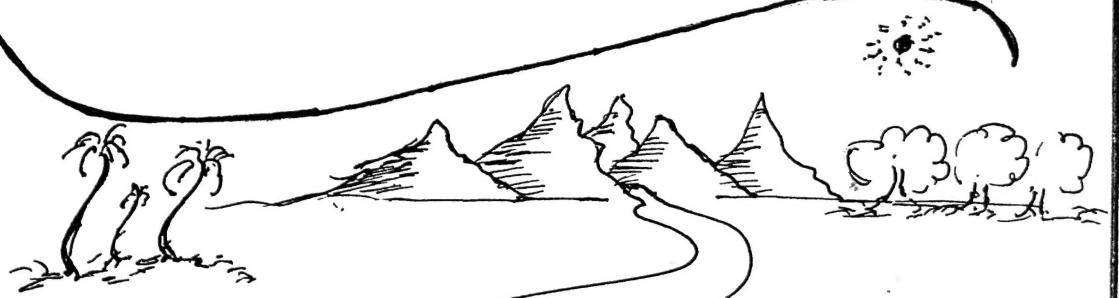


“ जो पद श्री सर्वज्ञ ने देखा ज्ञान में
 कह नहीं सके उसको श्री भगवान भी ;
 उस स्वरूप को अन्य पाणी तो क्या कहे ?
 अनुभवगोचर रहा केवल वह ज्ञान है....”
 • श्रीमद् राजचन्द्रजी •

अनुभूतियों की अकथ्य अभिव्यक्तियों की विधात्मा विमलाजी के
 अंतस्त्वलों में स्पष्ट सहायात्रा

अंतर्यात्रा ~ विमलसरिता सह



विश्वव्याप्त चेतनालोक के सिद्धाकाश के नीचे चिन्मयगान
 का चिर-गुञ्जन करती, स्थल स्थल बहती, पल पल उछलती, कलकल
 निनादिनी, विश्वविशालिनी विमलाजी की तीर्थसलिला विमल-जीवन
 -सरिता के चंद्र अंतस्त्वलों में स्वयंचेतना के अंतज्ञान सह पावनकारी
 स्पष्ट अंतर्यात्रा विराट विशाल महानद-सी विमल-सरिता की
 गहराइयों भरे गहरे पानी में पैठने की थोड़ी-सी डुबकियों
 केवल एक झलक और झाँकी मात्र के रूप में जो वसिष्ठ
 कर गई, पावन कर गई इस नन्हे पगले अंतर्यात्री की अल्प-सी
 जीवनसरिता को ~ जो बीच बीच में विराट 54 वर्षों तक बहती
 रही 1954 से!

“ प्राणिकर्म करते हुए भी, लुप्त करे न निजमान ।
 समाधिस्थ जीवन बहे, निर्ग्रथि द्वारा वह जान ॥

“ कषाय की उपशान्तता, मात्र स्वरूप का भान ।
 मोक्षधर्म पूरे नहीं, वह आत्मार्थ जान ॥ ”

• श्रीमद् जी की आत्मसिद्धि की अनुभूत अभिव्यक्ति में विमलाजी •

© प्रा० प्रतापकुमार ज. रोहिया
 वेगलार

[080-26667882 / 65953440 / 09611231580]
 9845006542

JINA-BHARATI
 1580, KUMAR SWAMY LAYOUT
 BANGALORE-560078
 (080-26667882/9611231580)



विष्वात्मा विमलादीदी : परिचय झाँकी - स्वानुभव के प्रकाश में

विष्णुमानव - विष्वात्मा वन चुकी विदुषी मुझी विमलाताई ठकार की कौन नहीं जानता ?

एकध बार भी उनके प्रपचन-धरण का जिन्हें लाभ मिला हो या उनकी एकध पुस्तक-कृति पढ़ी हो, जे उन्हें जीवनभर नहीं भुला सकेंगे। क्योंकि उनकी ओज-प्रासाद-माधुर्य युक्त परावाणी में ऐसा प्रभाव, ऐसा चुंबकत्व था कि श्रोता उनकी आंतर-चेतना से सहज ही जुड़ जाता! वाणी तो क्या, उनके सान्निध्य में मौनयात्रा में बैठना भी अपने निजी आनंदानुभव और अंतःशांति पाने का एक ऐसा अवसर बन जाता कि जीवन का वह चिरस्मरणीय "धन्य" क्षण बना रहता!! जिन जिन की यह दुर्लभ अवसर प्राप्त हुआ है वे स्वयं धन्य वन गये हैं, कृतार्थ वन गये हैं।

उच्च कोटि की किरल विदुषी, मौलिक चिंतक एवं आत्मानुभव-संप्राप्त जीवनसार्धिका विमलाबेन - विमलाताई - ठकार का देहजन्म रामनवमी 15 अप्रैल 1921 के दिन विदर्भ-महाराष्ट्र के आकोला जिले में हुआ। रायपुर-नागपुर में अप्रतिम स्पर्ध-पुरुषार्थ से एम.ए. दर्शनशास्त्र तक अध्ययन हुआ। प्रायः 88 वर्ष की सजग, प्रकाश-प्रिय, स्वयंज्योतिर्गामिनी जीवनयात्रा सानन्द संपन्न कर उन्होंने उसी 'सजग', "देह होते हुए भी देहतीत" अवस्था की अंतिम क्षण तक जीते जीते ॥ मार्च 2009 - फाल्गुन पूर्णिमा एवं चैतन्य महोत्सव की जयंती की प्रातः पांच बजे की "पूर्णातिथि" की अमृतबेला में सहज-समाधिमय, स्वैच्छिक देहत्याग किया।

"अंतःशरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो" वाली आत्मसत्ता - चैतन्यसत्ता बहिर्जगत में विष्णुरूपा - विष्वात्म स्वरूपा बन गई! एक अर्थ में अपनी स्वतंत्र आत्मसत्ता कायम रखते हुए भी उनकी जीवनज्योति विष्णुचेतना की महाज्योति में मिल गई!! विष्वात्मा बन गई!!! जाते जाते उन्होंने श्रीमद् राजचन्द्रजी-प्रदत्त स्वात्मानुभव प्रदायक, सर्वसाधना-सर्पधर्म मह्यु ऐसे "सहजात्म स्वरूप परमगुरु" मंत्र की विष्णुव्यापक रूप देने हुए ब्रह्म रूप दिया - "सहजात्म स्वरूप ही शुरुतत्त्व। जीवन ही परमगुरु। अपनी समझ को ही गुरु बनाये।"

समझ

२

जिस चिन्मय गान को उन्होंने जीवन भर जिस मृणमय साज पर
जाया था वह मृणमय साज—मिट्टी आदि मृणमयों का साज—
अब शान्त हो गया है, सजा के लिये सो गया है....! अब वह
नहीं कभी झंकृत होगा, न कभी मुखरित होगा....!! वह तो
अब मलमौन में, चिन्मौन में सोया रहेगा...!!!

यह वही साज है जिस पर स्वयं चिन्मय गान का कुरु
सजा जिसे जतन से छेड़ा करती थी। यह वही माध्यम रहा है
जिस से उसका चेतना-गान गुञ्जित-अनुगुञ्जित-स्पन्दित होता
रहा था...। बरसों पहले यही तो लिखा था मानों अपना आत्म-
परिचय अभिव्यक्त करते हुए अपने 22-5-1966 के पत्रकार्य
में ~

"मत पूछो मुझे कि क्या हूँ मैं और कौन हूँ मैं?
मृणमय साज पर बजाया चिन्मय गान हूँ मैं!
विश्वचेतना की वीणा का एक सङ्गुन स्पन्दन हूँ मैं,
विधाता की एक कविता हूँ, छंदों का निजछंद हूँ।
मिली, मुझे सब मिलो, सुनो मेरे श्वासों में झंकृत गीत सुनो;
आकाश का आलंबन हूँ, रूपातीत का स्वरूप हूँ।
उखो, मुझे सब कोई उखो, दुपण हूँ मुझ में निज रूप उखो।
चिन्मय गान हूँ मैं।"

[विमल स्मरण] पृ. ७१ : प्रभा केन कैवली

इस चिन्मय गान और मृणमय साज की कहानी बड़ी लंबी है, निराली
है, विलक्षण है, विशाल और विराट है विश्वमर में फैली हुई। चिन्म-
यता की विरल विभूति विमला जी तो स्वयं शायद अपने आत्म-परिचय में
इतना ही कहना चाहेगी मछुदेवीजी के शब्दों में कि —

"परिचय इतना उतिहास यही,
उमड़ी कल थी मिट आम चली, मैं नीरवरी कुसकी बडली।"
परंतु विमला जी की यह जीवन-बडली दुःख से भरती हुई नहीं थी —

3

अनेक दुःखों, कष्टों, संघर्षों, परिक्षों आदि को झेलते, गुजरते हुए भी दुःख अगर था भी, तो उन्होंने दुःख को दुःख माना नहीं था, एक अपसर एक चुनौती, एक आनन्द-पर्य माना था। फिर विश्वध्यानी बन चुकी उनकी चेतना में निजी दुःख-वैयक्तिक दुःख और परायण दुःख ऐसा खंड रहा ही कहाँ था ? अनेकों 'हजारों हजारों' जनों के दुःखों को उनकी 'समस्तता भरी सहेज कुरणा' ने अपना ही दुःख जब बना लिया था। आत्मसात् कर लिया था।

उनके इस चिन्मय-मृणमय जीवनगान के चंद स्वरों में ही उनकी थोड़ी-सी जीवन-झोंकी हम प्राप्त करेंगे। आकोला में देहजन्म के बाद मध्यप्रदेश के रायपुर के निकट उनके नाना के पास जहाँ उनका बचपन बीता वहाँ स्वामी विवेकानंद और अन्य सेंटों-पिछुड़जनों का पदार्पण सदा होता रहता था। ऐसे निमित्तों में प्रसरित आर्यजीवन एवं भारतीय दर्शनों के सात्विक वतावरण में उनके पूर्वजन्मों के संचित पुण्य रूप पूर्वसंस्कार नयपल्लवित होने लगते और बाल्या-वस्था से ही उनकी आत्मरखोज प्रारम्भ हो गई। वस्त्र लिखती हैं ~

॥ छठवें वर्ष में प्रवेश करते ही मेरी अनंतयात्रा प्रारम्भ हो गई। बुद्धि से इम्बिर की पहचान उस से पूर्व ही हृदय में ईशसत्ता व्याप्त हो गई। विद्यालय में अभ्यास चलता रहे, घर में घरकाम चलता रहे, परंतु मेरा मन योगेश्वर दासबोध, एकनाथी भागवत, स्वामी रामतीर्थ और स्वामी विवेकानंद आदि के ग्रंथों में डूबा हुआ रहता। जंगल में जाकर, दुस्मिणेश्वर जाकर और फिर कुम्भी घर से भाग जाकर भी मैं अपनी खोज जारी रखी हूँ।

॥ मैंने सातवें वर्ष में ही प्रसिद्ध स्वामी श्री योगीश्वर सीतारामदासजी के पास से अष्टांग योग की शिक्षा प्राप्त की।

3

अनेक दुःखों, कष्टों, संघर्षों, परिक्षों आदि को झेलते, गुजरते हुए भी दुःख अगर था भी, तो उन्होंने दुःख को दुःख माना नहीं था, एक अपसर एक चुनौती, एक आनन्द-पर्य माना था। फिर विश्वध्यानी बन चुकी उनकी चेतना में निजी दुःख-वैयक्तिक दुःख और परायण दुःख ऐसा खंड रहा ही कहाँ था ? अनेकों 'हजारों हजारों' जनों के दुःखों को उनकी 'समस्तता भरी सहेज कुरणा' ने अपना ही दुःख जब बना लिया था। आत्मसात् कर लिया था।

उनके इस चिन्मय-मृणमय जीवनगान के चंद स्वर्गों में ही उनकी थोड़ी-सी जीवन-झौंकी हम प्राप्त करेंगे। आकोला में देहजन्म के बाद मध्यप्रदेश के रायपुर के निकट उनके नाना के पास जहाँ उनका बचपन बीता वहाँ स्वामी विवेकानंद और अन्य सेंटों-पिदुजनों का पदार्पण सदा होता रहता था। ऐसे निमित्तों में प्रसरित आर्यजीवन एवं भारतीय दर्शनों के सात्विक वतावरण में उनके पूर्वजन्मों के संचित पुण्य रूप पूर्वसंस्कार नयपल्लवित होने लगते और बाल्या-वस्था से ही उनकी आत्मरखोज प्रारम्भ हो गई। वस्त्र लिखती हैं ~

॥ छठवें वर्ष में प्रवेश करते ही मेरी अनंतयात्रा प्रारम्भ हो गई। बुद्धि से इम्बिर को पहचानुं उस से पूर्व ही हृदय में ईशसत्ता व्याप्त हो गई। विद्यालय में अभ्यास चलता रहे, घर में घरकाम चलता रहे, परंतु मेरा मन योगेश्वर दासबोध, एकनाथी भागवत, स्वामी रामतीर्थ और स्वामी विवेकानंद आदि के ग्रंथों में डूबा हुआ रहता। जंगल में जाकर, दुस्मिणेश्वर जाकर और फिर कुम्भी घर से भाग जाकर भी मैं अपनी खोज जारी रखी हूँ।

॥ मैंने सातवें वर्ष में ही प्रसिद्ध स्वामी श्री योगीश्वर सत्पादमदासजी के पास से अष्टांग योग की शिक्षा प्राप्त की।

ॐ

"सर पर आकाश का मंडल है, धरती पर सुहानी मखमल है।

दिन की सूरज की मेरफिल है, रात (रात्रि) की तारों की सभा बाबा।"

स्वामी रामतीर्थ जैसे शान्ति के ऐसे कुडरत के दरबार में

विमलाजी का एकान्तसाधन-उपावास आनन्द के साथ महान साहस, जोरिम और हिंमत से भरा हुआ था। कल्पना कर सकते हैं एक युवती का ऐसे स्थान में अकेले-एककी रहने की ? उस मृणमय मिट्टी के साज में कौन-सी, किसकी, शक्ति भरी होगी ? भक्ति पाती होगी ? वहाँ कोई आराम अमोघ-प्रमोद का निवास नहीं था। भोजन के लिये थे निकट के फल केन्दमूल और ओढ़ने-बिछाने के लिये एक-दो कम्बल !! स्वामी रामतीर्थ की उस साधनसिद्धि शिला पर अठारह अठारह घंटों तक जमी रहती उनकी ध्यानापस्था मय बैठक—'आसन साँ मत डोल' वाली !!!

यह वही स्थान था जहाँ तब का जहाँ से दीपावली के अपने देवजन्म के दिन पर ही स्वामी रामतीर्थ ने जल समाधि लेकर देहत्याग कर दिया था और अपने देह को जहाँ में धुल दिया था। "हे मोत! बेशक उड़ा दे इस जिस्म को, मेरे और अजसम श्रीकृष्णमण्डली।"

यह कैसा योगानुयोग कि स्वेच्छा से नहीं किन्तु एक दुर्घटनावश विमलाजी का शरीर यहाँ से जहाँ में बह गया था, किसी संन्यासी ने दूर उन्हें बचाकर बाहर निकाल लिया था और स्वामी शिवानन्द के ऋषिकेश के आश्रम में और बाद में धर लाकर उनके शरीर के सुदीर्घ उपचार करने पड़े थे। जहाँ के कालेजजीवन के विद्याभ्यास काल की ऐसी घटनाओं के उपरान्त वे अपने आंतरजीवन की उपनिषदों—सूफीसंतों के जीवन-परिचय—रवीन्द्रनाथ टैगोर शरदुबाबु की साहित्यकृतियों की अध्ययन-यात्रा एवं नियमित एककी एकान्त साधना बराबर चलाये रखती थीं। तो कालेज के बाह्यजीवन की आवश्यकताएँ और मजबूती भी अपने ट्युशन देने आदि अर्थोपार्जन कार्य के साथ साथ बरूनी निभा लेती थीं। इन सभी बाधांतर साधनओं से विमलाजी वनने जा

ॐ

"सर पर आकाश का मंडल है, धरती पर सुहानी मखमल है।

दिन की सूरज की मेरफिल है, रात (रात्रि) की तारों की सभा बाबा।"

स्वामी रामतीर्थ जैसे शान्ति के ऐसे कुडरत के दरबार में

विमलाजी का एकान्तसाधन-उपावास आनन्द के साथ महान साहस, जोरिम और हिंमत से भरा हुआ था। कल्पना कर सकते हैं एक युवती का ऐसे स्थान में अकेले-एककी रहने की ? उस मृणमय मिट्टी के साज में कौन-सी, किसकी, शक्ति भरी होगी ? भक्ति पाती होगी ? वहाँ कोई आराम अमोघ-प्रमोद का ^{सुविधा भरा} निवास नहीं था। भोजन के लिये थे निकट के फल केन्दमूल और ओढ़ने-बिछाने के लिये एक-दो कम्बल !! स्वामी रामतीर्थ की उस साधनसिद्धि शिला पर अठारह अठारह घंटों तक जमी रहती उनकी ध्यानापस्थिति मय बैठक—'आसन साँ मत डोल' वाली !!!

यह वही स्थान था जहाँ तब का जहाँ से दीपावली के अपने देवजन्म के दिन पर ही स्वामी रामतीर्थ ने जल समाधि लेकर देहत्याग कर दिया था और अपने देह को जहाँ में धुल दिया था। "हे मोत ! बेशक उड़ा दे इस जिस्म को, मेरे और अजसाम श्रीकृष्णमन्त्री।"

यह कैसा योगानुयोग कि स्वेच्छा से नहीं किन्तु एक दुर्घटनावश विमलाजी का शरीर यहाँ से जहाँ में बह गया था, किसी संन्यासी ने दूर उन्हें बचाकर बाहर निकाल लिया था और स्वामी शिवानन्द के ऋषिकेश के आश्रम में और बाद में धर लाकर उनके शरीर के सुदीर्घ उपचार करने पड़े थे। जहाँ के कालेजजीवन के विद्याभ्यास काल की ऐसी घटनाओं के उपरान्त वे अपने आंतरजीवन की उपनिषदों—सूफीसंतों के जीवन-परिचय—रवीन्द्रनाथ टैगोर शरदुबाबु की साहित्यकृतियों की अध्ययन-यात्रा एवं नियमित एककी एकान्त साधना बराबर चलाये रखती थीं। तो कालेज के बाह्यजीवन की आवश्यकताएँ और मजबूती भी अपने ट्युशन देने आदि अर्थोपार्जन कार्य के साथ साथ बरूनी निभा लेती थीं। इन सभी बाधांतर साधनओं से विमलाजी वनने जा



गांधीजी, विन्हाजी, दादा धर्मधिकारी, जयप्रकाशजी, साने उरुजी,
 उंकारनाथ ठाकुर, जे. कृष्णमूर्ति, ^{शक्तिशंकर मलवी} उरुडयाल मल्लिकजी, पंडित
 सुखलालजी आदि आदि अनेक पुण्यश्लोक पुरुषों के साथ
 अपनी अनंत की खोज की जीवनयात्रा चलाये रखी। ^{दादा एवं अनेक} ^{नाथजी ने उन्हें आत्मज्ञ}
 विवेकानंदकृत भारत के 'हरिद्वारायण' की सेवा गांधी-दर्शन से ओर
 'दीन-पतिता, दुर्बल चित्त, धूलि-पतिता' सामान्य भारतजन के
 उत्थान की समान-समन्वित-संतुलित समाजजीवन में क्रान्त-
 -परिवर्तन की सम्भावना विन्हा के विकसित गांधी-दर्शन भूदान
 दर्शन - सर्वोदय दर्शन से उन्हें प्राप्त हुई। भूदान-सर्वोदय दर्शन
 में उन्हें आध्यात्मिक क्रान्ति का आग्रह दिखई दिया कि
 जिस आध्यात्मिक क्रान्ति की वेलें स्वयंदास थी, आजीवन
 स्वयंदास, क्रान्तदास ! ^{क्रान्तिकी}

जीवन के, भीतर आगे बढ़े हुए जीवन के, विद्रोह
भरे युवावस्था के आठ। पर उन्होंने भूडान आन्दोलन को समाधि
किये - जो अनगिनत कष्टों और अन्निपरीक्षाओं से भरी एक
रोमांचक ^{सूझनी} वास्तव है। इस आंदोलन के दौरान उन्होंने भारत के
चंपेपेपे का चैंडल और मोटरों - जीपों में - ट्रेनों की मालगाड़ियों में
भी तूफानी दौरा किया। क्रान्ति की अछा इरती बानी में ^{एन्गो}
और लखों की जनसभाएँ सम्बोधित कीं। फिर आंदोलन में
और बढ़ के जीवन में जो उनके साथ सहकार्य करने या
सहजीव्य जीने ^{के लिये} विशेषकर जो बल्ले आर्य, उन्हें उन्होंने
सापथ कर जिस भाषा में ललकारा उसे देखकर स्वामी
शुमतीय और संत कबीर की अक्खड़ बानी याद आ जाती
है - ^ए बड़े ^{हैं} तेरे ^{हू} पू ^{तो} कुछ ^{करके} उठेंगे।

॥ या वसन्त एते जगत्पुत्रा, या मरुक् उक्ता ॥ (स्वामी साह)

"कधीय श्यां बाजार में, तिये लुकाठी हाथ।
जो घर फूँके आपना, सो तले हमारे साथ।" (कबीर)
यहाँ अहंकार का घर जलाने के, मोत के डोचान बनकर,

४

'वस्त्र' के पागल बनकर, 'करेगी' था मरेगी' की फौलाड़
इच्छाशक्ति लेकर, 'इन्किलाब आग' में कूड़ पड़ने का
आह्वान जो विमलाजी ने अपनी इस कविता में दिया
है, वह द्वैत ही बनता है—

"इन्किलाब-आग है हम, खेल हम से मत करो;
खेल ही के खेल में जल जायगा घरबार सारा,
दिलाली कोई मत करो।
आंच में इस आग की, धौंस से कोई आ गया;
सेकर अमन और चैन को लुत्फ-तबाही पा गया।
इश्क के परवाने हैं हम, मौत के डीवाने हैं;
शोक अगर जीने से है तो दूर हम से सब रहो;
इन्किलाब-आग है हम, खेल हम से मत करो।"

["मौत के मुन्हाड़" : नूतन संस्करण अमेरिका वरखा-2014 : पृ. 16]

मौत की मुट्ठी में लेकर, इन्किलाब की, क्रान्ति की आग में
कूड़ना होता है। विमलाजी खुद ऐसे ही कूड़ी थीं और
अपनी 'शुद्धी' को, हस्ती को मिटाकर स्वयं ही इन्किलाब
की आग का मर्जो तक जलता-झड़कता शोला-सा बन
जाई थीं। इस पंक्ति लेखक की भाँति अनिक साक्षी हैं उनकी
उन दिनों की क्रान्ति की आग उगलती अपनी को। लेकिन
इस आग ने औरों को "जला देने" के बजाय जेगा दिया था।
आखिर यह "सत्य, प्रेम और कृपा" भर बाँटा विनोद के
महान्मिशन की वाणी थी। प्रेम-मानवीय प्रेम उसके केन्द्र-
स्थान में था और यह "प्रेम" एक फुल्ल अकसड़ रूप लेकर
उमड़ा था इस नय-दुर्गा के मुख से। ऐसे "अलख-प्रेम" के पूजक
अकसड़ कबीर ने भी ऐसी ही आगमरी प्रेम-धानी में पाखंडों
को ललकारा था—

"कबीर यह घर प्रेम का, खाला का घर नाली"—कहकर।



गांधीजी, विन्मोजी, दादा धर्मधिकारी, जयप्रकाशजी, साने उरुजी,
 उंकारनाथ ठाकुर, जे. कृष्णमूर्ति, ^{शक्तिशंकर मलवी} उरुडयाल मल्लिकजी, पंडित
 सुखलालजी आदि आदि अनेक पुण्यश्लोक पुरुषों के साथ
 अपनी अनंत की खोज की जीवनयात्रा चलाये रखी। ^{दादा एवं अनेक} ^{नाथजी ने उन्हें आत्मज्ञान}
 विवेकानंदकृत भारत के 'हरिद्वारायण' की सेवा गांधी-दर्शन से ओर
 'दीन-पतिता, दुर्बल चित्त, धूलि-पतिता' सामान्य भारतजन के
 उत्थान की समान-समन्वित-संतुलित समाजजीवन में क्रान्त-
 -परिवर्तन की सम्भावना विन्मोजी के विकसित गांधी-दर्शन-भूदान
 दर्शन-सर्वोदय दर्शन से उन्हें प्राप्त हुई। भूदान-सर्वोदय दर्शन
 में उन्हें आध्यात्मिक क्रान्ति का आग्रह दिखई दिया कि
 जिस आध्यात्मिक क्रान्ति की वेलें स्वप्नदृष्ट थी, आजीवन
 स्वप्नदृष्ट, क्रान्तदृष्ट ! ^{क्रान्तिकी}

जीवन के, भीतर आगे बढ़े हुए जीवन के, विद्रोह
भरे युवावस्था के आठ। पर उन्होंने भूडान आन्दोलन को समाप्ति
किया - जो अनगिनत कष्टों और अन्निपरीक्षाओं से भरी एक
रोमांचक कहानी है। इस आंदोलन के दौरान उन्होंने भारत के
चंपे चम्पा का पैदल और मोटरों-जिपों में- ट्रेनों की मालगाड़ियों में
भी तूफानी दौरा किया। क्रान्ति की अग्र सरती बानी में एन्होंने
और लाखों की जनसभाएँ सम्बोधित कीं। फिर आंदोलन में
और बढ़ के जीवन में जो उनके साथ सहकार्य करने या
सहजीव जिन विशेषकर जो बल्ले आये, उन्हें उन्होंने
सायध कर जिस भाषा में ललकारा उसे देखकर स्वामी
शुमतीय और संत कबीर की अवखड बानी याद आ जाती
है - बैठे हैं तेरे डूर पे तो कुछ करके उठेंगे।

॥ या वसन्त ए ए जायता, या मरुत उक्ता ॥ (स्वाश्रम राग)

"कधीय खड़ा बाजार में, तिये लुकाठी हाथ।
जो घर फूँके आपना, सो चले हमारे साथ।" (कबीर)
यहाँ अहंकार का घर जलाने के बाद, मोक्ष के डोचान बनकर,

9

भूदान-सर्वेडिय आन्दोलन के दौरान ही विमलाजी को इस प्रेम तत्व को प्रायोगिक रूप में अपकृ करने का प्रथम अवसर मिला। भूदान-दर्शन के मूल में इसकी जड़ें उन्होंने देखी थीं और इस से उसमें "आध्यात्मिक आयाम" केन्द्रस्थान में पाकर वह आकर्षित होकर जुड़ी थीं और बाद में उससे मुक्त भी हुई थीं। भूदान आन्दोलन में जुड़ने-मुक्त होने से साक्षरिणा उन के अपने ही शब्दों में यह दुर्घटना —

✓ "भूदान के पीछे मानवीय प्रकृति की नींव में निहित शुभ तत्त्वविकसक निश्चल प्रवृत्ति, मनुष्य-समाज के ऋण-विधान में आमूल परिवर्तन करने का पुरुषार्थ और मानव के मानस में जड़मूल की क्रान्ति निर्मित करने की प्रक्रिया — इन सभी तत्वों ने मुझे भूदान की ओर आकर्षित किया —।" (विमलाजी, 52)

उनके प्रारम्भ का यह आशय उनके भूदान आन्दोलन छोड़ने के समय अधिक स्पष्ट हुआ है और आन्दोलन में जाते जाते भारतवर्ष का प्राण-परिचय-प्रायः परिचय उनके आगे के कार्य में एक भिन्न प्रकार का प्रेरक अनुभव बन पड़ा... 'पिबुध जीवन' पत्र के सम्पादक के 30-6-1963 के पत्र के प्रत्युत्तर में विमलाजी ने यह स्पष्ट किया है —

✓ "मैं 1953 में भूदान आन्दोलन से जुड़ी तब लोककल्याण की कोई एक प्रवृत्ति समझकर उसमें प्रविष्ट नहीं हुई थी, परन्तु उस आन्दोलन का जो एक आध्यात्मिक पहलु था उससे मैं मुग्ध बनी रही और उस कारण से मैं आकर्षित हुई थी। मनुष्य में निहित innate goodness विकसक — नींव के शुभ तत्व विकसक प्रवृत्ति पर आधारित ऐसे इस क्रान्तिकारी आन्दोलन ने मेरे मनुष्य जाति के प्रति प्रेम से भरे हुए विश्वास को आकर्षित किया था। उससे साक्षरिण प्रवृत्ति के पीछे मेरे भीतर रही हुई कर्तव्य-शक्ति को अभिव्यक्त करने की कोई सास वृत्ति नहीं थी, परन्तु मनुष्यजाति के लिये प्रेम को अभिव्यक्त करने का आशय था।" (विमलाजी, 53)

मानव्यजाति के प्रति प्रेम का - करुणा का, आध्यात्मिक क्रान्ति का
 सिद्ध करके उनका स्वयं भूदान आंदोलन से मुक्त होकर चेतना का
 नया आयाम खोजने, अमर्त्य भूमि अर्द्धगिरि आदि की जोड़ में
 एकान्त में विमलाजी 1963 से बैठी।

यह आध्यात्मिक क्रान्ति सर्वप्रथम स्वयं से और स्वयं में
 घटित हुनी थी और फिर समाज में, बाह्य विश्व में। वरसों से
 उनके अंतर्मुख में चल रहे इस क्रान्त-चिन्तन क्रान्त-दर्शन
 को विष्णुहार्तिर्तक अष्टाक्षर-मुक्त, आडंबरशून्य श्री. जे. कृष्णमूर्ति
 के सम्पर्क से (1952-58) एक नई दिशा मिली। वास्तव में
 विमलाजी के भीतर ही चल रहे चिन्तन-प्रवाह को क्षेत्र

साम्बल- श्री. कृष्णमूर्ति का सादर्य्य संप्राप्त हुआ। एक ओर से अंतर्मुख
 चिन्तन के क्षेत्र में यह घटना घटी, तो दूसरी ओर से -
 विमलाजी के शरीर-क्षेत्र के तल पर चल रही दीर्घकालीन
 'कण-पीड़ा' से मुक्त होने का श्री. कृष्णमूर्ति द्वारा सत्य-
 प्रयोगादित हुआ, जो विमलाजी ने स्वयं प्रस्तावित नहीं
 किया था। करुणावश सत्य भाव से स्वयं श्री. कृष्णमूर्ति ने
 प्रथम - रखे हुए इस प्रस्ताव को भी विमलाजी ने तो उपेक्षा की थी
 जो कि विमलाजी के अनुरोध के बाद ही विमलाजी ने स्वीकार
 किया था। फलतः वे सदा के लिये इस घोर कण-पीड़ा से
 मुक्त हो पायी थी।

यहाँ मजे की बात तो यह थी कि भूदान-सर्पेडिक् आंदोलन
 से भी बड़ी विकसित मानवचेतना को आध्यात्मिक
 क्रान्ति के कार्य में विमलाजी को जुड़ना था आदि में बैठकर
 उसके निमित्त दोनों बने - कृष्णमूर्ति और विमलाजी !
 अनुत्त की यात्रा पर "ON AN ETERNAL VOYAGE" प्रस्थान करने
 जहाँ कृष्णमूर्ति ने मानसिक एवं शारीरिक मार्गमो से योगदान
 दिया, वहीं विमलाजी ने अपनी वरसों करुणावश आर्थिक गार्हस्थ्य

कुरुणाधारा
के साथ
कुरुणाधारा

उनके आध्यात्मिक क्रान्ति के मध्य। फिर यह वेदना धारा फिर
भूतान आंदोलन की यात्राओं के समान भारतभर में संचरित हो
लगी। प्रथम व्यक्ति का और फिर समष्टि का आतस-
परिवर्तन करने में एक कदम उठाकर भी महान् आघात से डरे
डरे कर दूर-दूर के कोने कोने में पहुँचने लगी। क्या
गुजरात-मैसूर, क्या राजस्थान-मध्य प्रदेश, क्या पंजाब-
उत्तर प्रदेश, क्या कश्मीर और पाकिस्तान-सरहद, क्या बिहार
आसाम और क्या नेपाल-बांग्लादेश-श्रीलंका - जहाँ जहाँ
आग लगती रही, यह कुरुणाधारा धारा उसे बुझाने पहुँचती
रही - नौआखली में 'कला-चलारे' चाते धूमते व्यक्ति
गांधी की तरह। मानों गांधी की ही शान्तिकामी आत्मा ने
विमलादित्य की अपन्य 'माध्यम' न बना लिया हो॥ डीडी
की इस कदर जान जोखिम में डालकर आग बुझाने सब
जगह डेढ़ती हुई दृष्टि के व्यक्ति कांतो तन्त्र उँगली कुछ होते
थे और बोल उठते थे कि

✓ "अरे! गांधी मरा क्यों है? यह तो इस शान्ति-
क्रान्ति की कुरुणाधारा के रूप में फिर जी उठा है।"

धर्मिकारी

गांधी के वारिस विनोद भी दूर से यह सब दृष्टि-
सुनकर डीडी पर अपने असीबों भरसाते रहते थे और उन्हें
अपनी "आत्मजा" मानने वाले दादा एवं अँकास्नाथजी आदि का
तो समय-समय पर क्या क्या करण और उनके लिये करना।
एक ओर से उनकी ऐसी शान्तियाराएँ पलती रहीं, तो दूसरी
ओर से शिविरों के द्वारा नवयुवाओं-छात्रों-बालकबालिकाओं-महिलाओं
में अभिनव परिवर्तन लाने वाली क्रान्ति-उत्क्रान्ति यात्राएँ। ऐसे
कई शिविरों का यह आलसिक साक्षी और सत्यमेवी भी रहा है और
डीडी के उन शिबिरों में भी शिव-संचार कर देने वाले शिविरों की जेक
स्मृतियों से भी प्रेरणा-पाथे पा लेता रहा है।

शिविरों द्वारा व्यक्ति-व्यक्ति की क्रान्ति का उकाउका
भारत की भौति विद्यों में भी फैला, जहाँ उनकी भारतीय सुनिवसिनी



सि — भूदान कार्य छोड़कर बनारस से अपने सामान को आबु
लि जाते समय विमलाजी को स्थानांतर हेतु टुकें बाड़ा चुकाकर।
वात्सल्य मलामुझों की ऐसी सर्वप्रकार की करुणा विमलाजी
के नूतन आध्यात्मिक उत्थान-परिवर्तन के उपक्रम में एक
विशिष्ट मायना, एक मलामुझ, एक संकेत रखती है।

अपने निजी आंतरदर्शन, आंतर-परिवर्तन से अपनी
अभिन्न चेतना को सुविकसित और सुसज्जित करने का
मलामुझान् यत्ना विमलाजी का। उनकी आध्यात्मिक क्रांति
का यह मलामुझान् सत्य-प्रेम-करुणा-अहिंसा का नित्यवर्तु
रूप प्रतीत होता था। पूरे भारत और विश्व भर तक प्रसारित होने
लगा। आबु में बैठकर भी विमलाजी की विषयवेदना उनकी नहीं
रह सकी। भारत में और भारत बाहर, जहाँ जहाँ उन्होंने हिंस्र
व्यवस्था, दुष्ट, अन्याय, अत्याचार, नफ़रत आदि दुष्ट या दूर से
सुने, उनकी अंतरस्थ विषयवात्सल्य करुणाधारा से बहते बिन्दु
रह नहीं गया। विश्वकी वेदना उनकी अपनी वेदना बनती चली

व्यक्त होती है यह प्रश्नों पर प्रश्न बनती हुई जैसे —
आखिर क्यों? शीघ्र उनकी इस वेदना-कविता में।

॥ क्यों? आखिर क्यों? मेरा क्या अपराध है?

जहाँ उगलने वाले उगलते हैं — स्पर्धा का, क्रोध का, दुष्ट का;
और आँतें मेरी भुनी जाती हैं।

आग लगाने वाले लगा जाते हैं — नफ़रत की, हिंसा की, व्यवस्था की,
और कलहना मेरा झुलसता है।

जवान मरते हैं, मारे जाते हैं — वियतनाम, कश्मीर हिन्दुस्तान में
और कोख मेरी सूनी पड़ती है।

औसू बरसे हैं — बच्चों के, बुढ़ों के, अपाहिजों के;

और खून मेरी धमनियों में सञ्चलता है। — क्यों? आखिर क्यों?

भूलता है मानव सत्य, प्रेम, करुणा

और हथों से मुकता मेरा माथा है।

(मैन के उस पार, 236)

कुरुणाधारा
के साथ
कुरुणाधारा

उनके आध्यात्मिक क्रान्ति के मध्य। फिर यह वेदना धारा फिर
भूतान आंदोलन की यात्राओं के समान भारतभर में संचरित हो
लगी। प्रथम व्यक्ति का और फिर समष्टि का आत्म-
परिवर्तन करने, महाकण्ड उठाकर भी महान् आघात से डरे
डरे कर दूर-दूर के कोने कोने में पहुँचने लगी। क्या
गुजरात-मैसूर, क्या राजस्थान-मध्य प्रदेश, क्या पंजाब-
उत्तर प्रदेश, क्या कश्मीर और पाकिस्तान-सरहद, क्या बिहार
आसाम और क्या नेपाल-बांग्लादेश-श्रीलंका - जहाँ जहाँ
आग लगती रही, यह कुरुणाधारा उसे बुझाने पहुँचती
रही - नौआखली में 'कला-चलारे' चाते धूमते व्यथित
गांधी की तरह। मानों गांधी की ही शान्तिकामी आत्मा ने
विमलादित्य की अपन्य 'माध्यम' न बना लिया हो॥ डीडी
की इस कदर जान जोखिम में डालकर आग बुझाने सब
जगह डेढ़ती हुई हुस्वर व्यथितों का तो तब उगली दुआ होती
थी और बेजोड़ उठते थे कि

✓ "अरे! गांधी मरा क्यों है? यह तो इस शान्ति-
क्रान्ति की कुरुणाधारा के रूप में फिर जी उठा है।"

धर्मिकारी

गांधी के वारिस विनोबा भी दूर से यह सब द्रष्टे-
सुनकर डीडी पर अपने असीरुद्धि बरसाते रहते थे और उन्हें
अपनी "आत्मजा" माने पाले डाँडा। एवं अँकास्नाथजी आदि का
तो समय समय पर क्या क्या करण और उनके लिये करना।
एक ओर से उनकी ऐसी शान्तियाराएँ पलती रहीं, तो दूसरी
ओर से शिविरों के द्वारा नवयुवाओं-श्रमों-बालकबालिकाओं-महिलाओं
में अभिनव परिवर्तन लाने वाली क्रान्ति-उत्क्रान्ति यात्राएँ। ऐसे
कई शिविरों का यह आलम्बिक साक्षी और सत्यमेवी भी रहा है और
डीडी के उन शिबिरों में भी शिव-संचार कर डेढ़ पाले शिविरों की जेक
स्मृतियों से भी प्रेरणा-पाथे पा लेता रहा है।

शिविरों द्वारा व्यक्ति व्यक्ति की क्रान्ति का उकाउका
भारत की भौति विद्वानों में भी फैला, जहाँ उनकी भारतीय बुनियादी

विमलादीदी द्वारा स्वयं-प्रस्तुत यह भाषा भारत-विदेश दोनों के लिये एक महत्त्व रखता है। जिस 'अगम सूत्र' = आत्म तत्त्व का अभाव वे विदेशों में पाती हैं, वहाँ उसे प्रतिष्ठित करती हैं। हर दिल में उसकी ज्योति जगती है। हर दिशाहीन या पथभ्रान्त पथिक को वे अपने सही मार्ग पर लाकर रख देती हैं। विश्व के चालीस देशों की शताधिक यात्राएँ अपने आप में उनके ऐसे विष्णुआत्मा रूप की महान उपलब्धि हैं।

बाबा-विनोबा
लालित

तो फिर विदेशों से स्वदेश में लौटकर, "हरिके काज बिना सार्थ उस सन्त को कब धिस्मारे ?" वाली कवि दुःसायल की उक्ति को सार्थक करती हुई वे यहाँ की अनर्गल समस्याओं को सुलझाने, सारे भारत के द्वारों पर निकल पड़ती हैं। मानो गांधी-विनोबा-जयप्रकाश-रविशंकर महाराज-डा. धर्मधिकारी-जे. कृष्णामूर्ति का ही विविध विरल प्रतिरूप !!

पंजाब-आसाम-गुजरात इत्यादि अनेक प्रदेशों की समस्याओं को सुलझाने और सारे भारत की मूलगत समस्याओं को, विमलसरिता अपने शीतल-निर्मल-विमल ऐसे शांतिजल के द्वारा, उनकी जड़ों में जाकर किस प्रकार सुलझाती हैं यह स्वयं ही वनता है। जलते हुए पंजाब में 1984 के दिनों में जाकर उन्होंने कहा ~

✓ "इतिहास गवाही देता है कि हिन्दु धर्म को और भारतीय एकता को बचाने के लिये सिक्खों ने अनेक बलिदान दिये हैं। स्वातंत्र्य संग्राम में भी उनकी भूमिका महत्त्वपूर्ण रही है। शहीद भगतसिंह जैसे वृद्ध-से युवकों ने भारत की आज़ादी के लिये अपने प्राण निछावर किये हैं। सचमुच तो ऐसे बहादुर, राष्ट्रभक्त सिक्खों के चित्त में स्वातिस्तानकी धातु उठी, वही हमारी धार है। xxx भारत देश आज नैतिक-सांस्कृतिक संकट में से गुजर रहा है। पदभ्रष्ट, संस्कृतिभ्रष्ट और

(ए) धर्मत्रिष्टुष्ट उसका मूलभूत कारण है (हमने) परमात्मा के स्थान पर पैसे, संपत्ति और सत्ता को दाम्बिल किये। xxx पंजाब में वैयक्तिक रूप से आपके पास विनोबाजी और जयप्रकाश जी की संतान के नाते से आई है। पश्चिम के देशों में से जो आर्थिक ढांचा लाये हैं उसके कारण हमारा पतन हुआ है। भारतीय संस्कृति को हमने अपनाया है। भारतीय संस्कृति का गठन तो अनेक संप्रदायों से हुआ है। वह एक शानदार संस्कृति है।"

V. G. M.
(Bolo
Types)

इसी बात को वे जब आगे कहती हैं तब ऐसा लगता है, मानों वे शुरुआत ही के अद्भुत "भारतदीप" काव्य "एड भारतेंदु सागरतरे, जगोरे प्राण धारे" का ही स्मृतिभाष्य कर रही हों ~

✓ "हमें आत्मबल को जागृत करना होगा। बालकों को सीखाना होगा कि यहाँ कितनी ही जमातें रहती आई हैं। कितनी ही संस्कृतियों का यह संगमस्थान है। हम सभी यहीं के निवासी हैं। हम सभी मनुष्य हैं। मनुष्य के नाते इस धरती पर एक-दूसरे के साथ हिलमिल कर जीना है। आज तो इन्सानीय-मानवता ही भय में है। शिक्षा का कार्य मनुष्य को सही अर्थ में मनुष्य बनाना है और चारित्र्यगठन करना है। बालकों में से सच्चे इन्सान-मानव पैदा करने हैं जो झुके नहीं-किसी को झुकाने नहीं, जो उठेंगे नहीं-किसी को डरायेंगे नहीं, जो स्वयं स्फुरेंगे नहीं आयेंगे, न किसी को स्फुराएँ...।"

ए - 'विमल जीवनयात्रा' डॉ. प्रफुल्ल डवे : पृ. 201-204 : अक्टूबर

1984 की इस पंजाबयात्रा के अनर्गल प्रयत्नों के बाद विमलजीने 1987 के पंजाब में राष्ट्रपति शासन लादे जाने के बाद भी परिस्थिति में जब सुधार नहीं हुआ तब अहमदाबाद से एक मरुत्वपूर्ण लेख लिखा और आखिरी से 24-1-88 के रोज भारत के राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री को खुला पत्र लिखा। बाद में राष्ट्रपति को उद्देशित एक तगाड़ा, प्रेरक लेख भी लिखा, जिसमें 'समस्या का हल पंजाब की जनता के हाथ में' बतलाया।

इस प्रकार निर्यता से, बिना किसी शोष-संकोच आग्रह-पूर्वक के, भारत के एक जिम्मेदार नागरिक के रूप में, अध्यात्म के अधिष्ठान पर रहकर उन्होंने अपना चिंतन भी प्रस्तुत किया और कृपावश लोगों के बीच जाकर उनकी समस्याएँ-सुखदुःख जानने और मिलने का भरसक प्रयास भी किया। पंजाब समस्या को उन्होंने राष्ट्र के लिये एक पढ़ावपाठ-बोधपाठ बतलाया।

फिर पंजाब की भाँति आसाम की समस्या में राष्ट्रीय संकट को देखती हुई वे वहाँ पहुँचीं उसके कारण और निवारण सोजने। समस्या की तरह में वे गईं। इसके पूर्व वे 1954 में आसाम गई थीं। फिर 1981 में, जब उन्होंने वहाँ डीपिकल रहकर, सभी समुदायों से मिलकर बैठके आयोजित कीं, आंदोलनकारियों को पत्र लिखे, उनसे चर्चाएँ कीं, विदेशी नागरिकों की समस्या की जड़ों में गईं। फिर 1984 में आखिरी से आसाम की आखिरी परिस्थिति के विषय में तलस्पर्श प्रयत्न कर सभी सम्बन्धित जनों को, विनोबाजी को, प्रधानमंत्री को आंदोलनकारी नेताओं को लिखा। फलतः आसाम के लोग, उसके बहादुर युवा नेता और आसाम गण परिषद् ने विजय पाया। इसे विमलजीने 'लोकतंत्र का दूसरा प्रभान' कहकर 1985 के अंत में प्रतिष्ठा दी। इतना ही नहीं, आसाम की प्रजाशाक्ति की धन्यवाद स्थापित करके 'गुजरात विद्रोह' द्वारा अहमदाबाद में विमलजी की अध्यक्षता में एवं श्री. उमार्शंकर जोशी, यशवंत शुक्ल, श्री. वासुदेव महेता, श्री. अरविंद जेठाई, श्री. विष्णुपन्ना जैसे प्रबुद्धजनों की उपस्थिति में अनुमोदना-सभी भी हुई।

आसामी जो
हूँ

✓ "हमें आत्मबल को जागृत करना होगा। बालकों को सीखाना होगा कि यहाँ कितनी ही जमातें रहती आई हैं। कितनी ही संस्कृतियों का यह संगमस्थान है। हम सभी यहीं के निवासी हैं। हम सभी मनुष्य हैं। मनुष्य के नाते इस धरती पर एक-दूसरे के साथ हिलमिल कर जीने का है। आज तो इन्सानीय-मानवता ही भय में है। शिक्षा का कार्य मनुष्य को सही अर्थ में मनुष्य बनाना और चारित्र्यगठन करना है। बालकों में से सच्चे इन्सान-मानव पैदा करने हैं जो झुके नहीं-किसी को झुकाने नहीं, जो उठेंगे नहीं-किसी को डरायेंगे नहीं, जो स्वयं स्फुरें नहीं जायेंगे, न किसी को स्फुरावें..."

ए - 'विमल जीपनयात्रा' डॉ. प्रफुल्ल डवे : पृ. 201-204 : अक्टूबर

1984 की इस पंजाबयात्रा के अनर्गल प्रयत्नों के बाद विमलजीने 1987 के पंजाब में राष्ट्रपति शासन लादे जाने के बाद भी परिस्थिति में जब सुधार नहीं हुआ तब अहमदाबाद से एक महत्वपूर्ण लेख लिखा और आखिरी से 24-1-88 के रोज भारत के राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री को खुला पत्र लिखा। बाद में राष्ट्रपति को उद्देशित एक तगाड़ा, प्रेरक लेख भी लिखा, जिसमें 'समस्या का हल पंजाब की जनता के हाथ में' बतलाया।

इस प्रकार निर्यता से, बिना किसी शोच-संकोच आग्रह-प्रवृत्ति के, भारत के एक जिम्मेदार नागरिक के रूप में, अध्यात्म के अधिष्ठान पर रहकर उन्होंने अपना चिंतन भी प्रस्तुत किया और कृपावश लोगों के बीच जाकर उनकी समस्याएँ-सुखदुःख जानने और मिलने का भरसक प्रयास भी किया। पंजाब समस्या को उन्होंने राष्ट्र के लिये एक पढ़ावपाठ-बोधपाठ बतलाया।

फिर पंजाब की भाँति आसाम की समस्या में राष्ट्रीय संकट को देखती हुई वे वहाँ पहुँचीं उसके कारण और निवारण सोजने। समस्या की तह में वे गईं। इसके पूर्व वे 1954 में आसाम गई थीं। फिर 1981 में, जब उन्होंने वहाँ डीपिकल रहकर, सभी समुदायों से मिलकर बैठके आयोजित कीं, आंदोलनकारियों को पत्र लिखे, उनसे चर्चाएँ कीं, विदेशी नागरिकों की समस्या की जड़ों में गईं। फिर 1984 में आखिरी से आसाम की आखिरी परिस्थिति के विषय में तलस्पर्श प्रयत्न कर सभी सम्बन्धित जनों को, विनोबाजी को, प्रधानमंत्री को आंदोलनकारी नेताओं को लिखा। फलतः आसाम के लोहा, उसके बहादुर युवा नेता और आसाम गण परिषद् ने विजय पाया। इसे विमलजीने 'लोकतंत्र का दूसरा प्रभान' कहकर 1985 के अंत में प्रतिष्ठा दी। इतना ही नहीं, आसाम की प्रजाशाक्ति की धन्यवाद स्थापित करते 'गुजरात विद्रोह' द्वारा अहमदाबाद में विमलजी की अध्यक्षता में एवं श्री. उमार्शंकर जोशी, यशवंत शुक्ल, श्री. वासुदेव महेता, श्री. अरविंद जेठाई, श्री. विष्णुपन्ना जैसे प्रबुद्धजनों की उपस्थिति में अनुमोदना-सभी भी हुई।

आसामी जो
हूँ

पंजाब, आसाम की भाँति काश्मीर समस्या एवं गुजरात की कौमी अशांति की समस्या से श्री विमलाजी की कुणार्धरा कैसे अछूती रहती? वहाँ भी अनेक बार उनका शाता-प्लावन होता रहा।

1985 में अहमदाबाद की अनेक वस्तियों (पोल्डो) में वे पहुँची और कौमी आग या मिलिटरी की गोलियों से अने गये लोगों के शवों के स्वरूपों के औस पोंछने लगीं~

✓ "आज तो मैं फूलार या तिलक लगवाने नहीं आई हूँ, परन्तु तुम्हारे दुःख में सहभागी बनने आई हूँ, तुम्हारे औस पोंछने आई हूँ~"।

"गुजरात की जनता सौम्य संस्कारी जनता के रूप में प्रसिद्ध है। मैं मानती हूँ कि वह संस्कारिता वह सज्जनता नष्ट नहीं हुई। पुलिस ने उन्मत्त बनकर अत्याचार किये। निर्दोष लोगों की जानें गईं। खंजरवाजी चली। हम टंटे फिसाद, खूनामरकी, धम-फूटने—यह सब देख रहे हैं। यह कोई एक दिन में खड़ा नहीं हुआ है। आझाडी मिलने के बाद हम भूल गये कि यह तो ऋषियों की, संतों की भूमि है, धर्मचरण की तपो-भूमि है। दुनिया में सिर्फ़ दो ही वस्तुओं का स्मरण हमें रहा: पैसा और सत्ता। भगवान् पर से हमारी नज़र हट गई। सत्ता के लिये इन अड़तीस वर्षों में हमने कौन से पाप नहीं किये? चुनाव जीतने के लिये लोगों की डराया, डौटा, धमकाया; हम पाप के, अधर्म के रास्ते पर चढ़े। आसाम-बिहार-पंजाब में जो अपराचार चलाए, निर्दोष निरपराधी की छाती में गोलियाँ लगती हैं—यह एक दिन का ही परिणाम नहीं है। यह सारा सामुदायिक पाप मैं से उत्पन्न हुआ है।

✓ "हमने तो 'सत्यमेव जयते' जगह जगह पर लिख दिया। पर जीवन में देखने जायें तो सत्य खोजने पर भी मिलता नहीं है। संप्रलता की शक्ति को हम भूल गये हैं!

मांगव्य "नागरिकों की एक समिति बने xxx अपनी सुरक्षा हमें स्वयं ही करनी होगी.... इसके लिये शांतिसेना की स्थापना करनी चाहिये।

मालता "इन तीन महीनों में यहाँ जो खून का खेल चला, वह देखकर दिल कहा नहीं सकता है। तुम्हारे दुःख दुर्द में मैं शामिल हूँ। मैं शर्मिंदा हूँ। जिसके दिल-दिमाग में इनून पैदा हुआ, उन सबकी ओर से माफ़ी मांगती हूँ। मकान सुलगाये गये, बेकसूर लोगों की पकड़ा गया। यह बेवर्दी कैसे दूर हो सकती है? xxx

अनेक अंतर्जपि

19

अनेक रूपों में अपना समग्र योगदान प्रदान करनेवाली विमलाजी का ऐसा लौकिक वृहज्जीवन उनके एकांतिक अंतर्जपि से भिन्न नहीं था। जीवन को अखंडरूप में, संस्थिति में, समग्रता में जी रही इस सामान्य दीर्घ रही असामान्य विभूति में वृहज्जीवन-अंतर्जपि का भेद कहाँ ?

नाडोपासना

परन्तु फिर भी उनकी अंतरंग रुचि, साधना एवं सिद्धियों-उपलब्धियों की दृष्टि तो उनकी यह अवस्था सर्वोत्कृष्ट प्रकार की रही है। उनकी इस साधना में नाद का, संगीत का और मूर्धन्य नादयोगी संगीतज्ञों का भी बड़ा स्थान रहा है।

विरासत में संगीत को प्राप्त करनेवाली विमलाजी व्यावस्था से माधुर्यमयी भक्ति की मस्ती में जाती थीं। दादा धर्मधिकारी की सान्निध्य में एकबार अनन्य तल्लीनता पूर्वक भजन गाकर मीरा जैसी भक्ति का परधान चालनेवाली विमलाजी की नाद-संगीत के क्षेत्र में पथप्रदर्शक भी मिले नादब्रह्मोपासक संगीतमार्ति पंडित अंकारनाथ जी ठाकुर जैसे। अंकारनाथजी का संगीत प्रथम बार सुनने के बाद उनका उनके समीप बैठे संगीतश्रोतकों के साथ उनका संबंध-अनुबंध-संवाद-प्रतिपाद विमलाजी ने जानना चाहा था। यह जानकर और उनका अपूर्व नाडोपासना-भुक्त संगीत सुनकर एक ओर से जहाँ वे पंडितजी के नादलोक में लीन होती गई, वहाँ दूसरी ओर से स्वयंपंडितजी भी उनकी 'नाडयोगिनी' के रूप में अपार योग्यता एवं क्षमता देखकर उन्हें अपनी आत्मजा के रूप में अपनाये बिना नहीं रह सके। नाडयोगसाधना की, प्रणव-अंकार नाद से अनाहत नाद के श्रवण की ओर धावा करने की इन दोनों नाडोपासकों की कहानी फिर विमलाजी के जीवन के एक अन्य एवं प्रधान पहलू की दर्शाती है।

पंडित अंकारनाथजी के साथ के उनके अनेक प्रसंगों में से एक डी का उल्लेख एवं स्वयं विमलाजी का एकांतसाधन में नाड-उपसना, नाद-श्रवण के प्रसंग प्रेरणाप्रद रहेंगे।

युवावस्था में डीडीने हिमालय में स्वामी रामतीर्थ की गुफा में जो मंत्र साधना की थी, उसमें जे में से एक प्रधान मंत्र जाय था प्रणवनाड अंकार का। इस मंत्र-अंकार नाद-गान का एकांत में साधन करते हुए शरीर पर उसका क्या परिणाम आता है यह उन्हें अध्ययन करना था प्रत्यक्ष स्वयंप्रयोग के द्वारा। अंकार का नाद जप करी वैरपरी-पाणी से प्रकट रूप में, तो करी उपांशु रूप में चलता। इस सप्ताह तक मौन और यह

"जुद्ध मैलाना आसान है। परंतु ~~जुद्ध~~ निकलवा डालना मुश्किल है। इस्लाम में तो शांति, अमन, चैन का पयगाम है। हमारे भीतर पारखंड पैठ गया है। सच्चे इन्सान बनो। ~~xxx~~ पहले इन्सान बनने के बाद मसहब की बातें करना शोभा देता है। इन्सानियत के बिना खुदा की बंदगी हो नहीं सकती। इस मुल्क में हमें रहना है, तो मुहब्बत से, इन्सानियत से रहे।" ("विमल संस्मरण पृ. 273-274-75)

इस प्रकार दीदी खुद ऑसू पीते जायें, लोगों के ऑसू पोछते जायें, आम्ब्यासन देते जायें, प्रभु का पयगाम सुनाते जायें और शांति समिति गठन करने का कहते चले जायें ---। इस विकट परिस्थिति का हाहाकार शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता।

भूदान आंदोलन प्रत्यक्ष रूप में छोड़कर आधु में जीवनयोग की परिस्थिति-कारी साधना में लगने के बाद भी भूदान-सर्वेस्व्य दर्शन का, गाँधी-विनोबा दर्शन का जो मानवीय प्रेम का आध्यात्मिक छवि था वह इन सारी भारतयात्राओं और विश्वयात्राओं में छुटा नहीं था, अपितु और व्यापक और विकसित हुआ था - नई दृष्टि, नई सूझबूझ, नये आंतरदर्शन और अन्विगम के साथ। उनका आध्यात्म उन्हें लोकतन्त्र से विमुख नहीं, और अन्विगम कर रहा था। विनोबाजी का भूदान-उद्देश्य दिलों को जोड़ने का था।

उपर्युक्त छोड़े भारत-प्रदेशों की समस्याओं को कुल मिलाकर देखें तो उनके कितने प्रश्नों, प्रदेशों में, प्रसंगों, आंदोलनों आदि में अपनी क्रान्तिकारी के द्वारा भूदान हुआ है। एक ओर से पश्चिम में आनिवाली अनेक व्यक्तियों और शिविरादि में उनके द्वारा नूतन मनुष्य का सृजन होता चला है, तो दूसरी ओर से व्यापक फलक पर अनेक समस्याओं का यथासामर्थ्य समाधान। इन समस्याओं और कार्यकलापों की सूची तैयार करने जायें तो बड़ी लम्बी होगी। संक्षेप में -

(1) आपातकालीन परिस्थिति में जयप्रकाशजी आदि के सहयोग (2) गुजरात, राजस्थान, मध्यप्रदेश, पंजाब, हिमाचल प्रदेश, काश्मीर, आसाम, केरल, आंध्र, कर्नाटक, तमिलनाडु, गुजरात, किन किन प्रदेशों में, कितने कष्टों की उठाती हुई विमलाजी एक शांति मशाल लिये धूमि है - अध्यात्म के भारतीय सत्य के नूतन संशोधित आधार पर ! कितने प्रदेश इस विराट देश के और कितनी समस्याएँ !! आपातकाल, गोपध-गोरक्षा आंदोलन, संपूर्ण क्रान्ति अनियान, कृषि-जोसेवा-ग्रामस्वराज संस्थापना - गुजरात और इन्सान विराट्टी की स्थापना, कैसी एवं अनामत आंदोलनों में शांति-स्थापना - शांतिसेना प्रवर्तना - ऐसे कितने रूपों में उनका समग्र योगदान !!

होता चला है।

भी की थी, यह सर्वविदित है।

पंडित अंकारनाथजी के नाड-मोडा-प्रवेश का डीडी के जीवन में विशेष स्थान रहा। इस घटना के बाद स्वस्थ हो जाने के पश्चात् डीडी अपने प्रवृत्ति-कार्यों के बीच से भी अंत में शिवकुटी माउन्ट आश्रम आकर बसने के बाद भी पंडित अंकारनाथजी से संगीत श्रवण करने और उनका वात्सल्य-स्नेह पान करने निश्चित जाया करती थी। अनेक स्थानों के ऐसे अनेक प्रसंग भरे पड़े हैं। पंडितजी उन्हें प्रवण कराकर संतुष्टि पाने।

पंडितजी के जीवन-समापन समय का अद्भुत, अद्वितीय प्रसंग चिरस्मरणीय बन चुका है। स्वयं यह पंक्ति-लेखक उस प्रसंग का, उसमें निहित पंडितजी की अपार वात्सल्यता का और इस पिता-पुत्री की दूरदृष्टि-दूरदर्शनी की क्षमता-सिद्धि का साक्षी है। अपनी "Voyage with an unbroken Vimalajyoti" नामी पुस्तिका में यह इस प्रकार व्यक्त हुआ है:-

"महागायक अंकारनाथ ठाकुर ने आत्मजा को अंतिम भजन सुनाया।"

"1967 के दिसम्बर माह के अंतिम दिनों की यह बात है।

तब विसनगर महिला आर्ट्स कॉलेज के प्रिन्सिपल के रूप में कार्य-काल के दौरान हमने अन्य साथी-सहयोग प्राप्त कर, उत्तर गुजरात में आयोजित होती रही छात्र-शिविर-शृंखला में प्रधानतः हमारी कॉलेज की छात्राओं को लक्ष्य में रखकर, विमला डीडी का विसनगर त्रिदिवसीय शिविर आयोजित किया था। उनके अनुग्रह-संमति से उनका और उनके साथ पधारी हुई डॉ. प्रेमलता शर्मा (पं. अंकारनाथजी की शिष्या एवं B.A.U. की उच्च स्तरीय डिप्लोमा फ्रॉम फिजिक्स ऑफ आर्ग्युमेंट का आतिथ्य करने का हमें सौभाग्य प्राप्त हुआ। शिविर की बैठकों के उपरान्त हमारे ही निवास में ही हम परिवारजनों, नन्ही बालिकाएँ चिं. पारुल-वन्दना-मविता एवं सारधुमिणी सुमित्रा को उनका दुर्लभ साक्षि-ध्यान मिलता। रात को सत्संग बैठक और प्रातःकाल मौन-ध्यान बैठकें जमीं रहतीं। आनंद के, अंतरनिंद के, ज्वार उमड़ते। डीडी की प्रचंड हँसी के फव्वारे फूटते।

"एक प्रातःकाल की घटना है।

"पिछली रात की सत्संग बैठक के अंत में डॉ. प्रेमलता शर्मा ने पं. अंकारनाथजी के भजन भावविभोर बनकर आकर सुनाये थे। पंडितजी ने विमला डीडी को अपनी आत्मजा मानकर उन्हें अपार वात्सल्य प्रदान

किया था यह बात भी उन्होंने की थी। उन दिनों पंडितजी बोम्बे अस्पताल में बीमार थे। इस भूमिका के साथ सभी उस रात को निद्राधीन हुए थे—पंडितजी के 'जोगी मत जा!' भजन के त्रैवी के स्वरों में सममाण होते हुए!!

"प्रातः काल दीदी जल्दी तो जागते ही थे। परन्तु उस प्रातः तो बहुत ही जल्दी—मध्य रात्रि के बाद जल्दी उठकर वे पद्मासन लगाये ध्यान में बैठ गये। मैंने भी उन्हें देखकर, उनको बिना विक्षेप किये, किम्वदन्त से उनके समीप नीचे आसन जमाया और उनकी मौन-ध्यान की अंतर्धारा में सम्मिलित होने का प्रयत्न प्रारम्भ किया। प्रायः एक घंटे के बाद जब दीदी लघुशंकरार्थ जाने हेतु उठे तब उनके अधिक जल्दी उठ जाने का स एज ही मैंने कारण पूछा। पुनः ध्यान में बैठते हुए उन्होंने मुझे इतना ही उत्तर दिया कि, 'पंडितजी अंकारनाथजी मुझे उनकी अंतिम नूतन संगीत-रचना सुनाने बुला रहे हैं'—और वे पुनः ध्यानस्थ बन गये—पंडितजी के साथ अपना दूरस्थ अंतस्-तार जोड़ते हुए। अपनी इस प्रिय आत्मजा को वे मुँह से बीमारी के बिछौने से अंतिम वात्सल्यपूर्ण दिव्यसंगीत सुना रहे थे!! प्रायः साढ़े पाँच बजे दीदी ने आँखें खोलकर, यह स्पष्टीकरण करते हुए कहा—

'पंडितजी की मरायात्रा आरम्भ हो गई... उन्होंने अपने पार्थिव शरीर का त्याग कर दिया!!!'

"वे पुनः मेन में संचरण कर गये। प्रातःकाल छह बजे के आँल इन्डिया रेडियो ने पंडितजी के देहत्याग के समाचार देकर माझी डी—दीदी के इस दूरस्थ दर्शन और श्रवण की—*clav-voyance & Mental telepathy* की! 'मत जा' जानियाला जोगी स्वयं ही अगम-यात्रा पर निकल चुका था!! ओं शक्तिः।

"दूसरे दिन मिश्र बैठक में दीदी ने पंडितजी को अध्यात्मिक डी और प्रेमलताजी ने दूधदू अंकारनाथजी के ही स्वरों में 'जोगी मत जा!' गाकर सभी की अश्रुधारा बहा दी।"

नाद-योगी अंकारनाथजी तो नादलोक में सिधार गये और उनकी यह नादयोगिनी आत्मजा जीवनभर उनके ^{आराधना} आराधन-अनाम नम्र का अनुवृत्त करती रही—नादात्मक जगत् की मूर्त रूप देती हुई और अपनी नादसाधना में 'आदिनादम् अंकारम्' अपनी यह विनयमयी सरल विभक्त पद्धति करती हुई। बड़ी ही दृष्ट्य है, उपडिप है उनकी यह नाद-युक्त रचना:

किया था यह बात भी उन्होंने की थी। उन दिनों पंडितजी बोम्बे अस्पताल में बीमार थे। इस भूमिका के साथ सभी उस रात को निद्राधीन हुए थे—पंडितजी के 'जोगी मत जा!' भजन के त्रैवी के स्वरों में सममाण होते हुए!!

"प्रातः काल डीडी जल्दी तो जागते ही थे। परन्तु उस प्रातः तो बहुत ही जल्दी—मध्य रात्रि के बाद जल्दी उठकर वे पद्मासन लगाये ध्यान में बैठ गये। मैंने भी उन्हें देखकर, उनको बिना विक्षेप किये, किम्वदन्त से उनके समीप नीचे आसन जमाया और उनकी मौन-ध्यान की अंतर्धारा में सम्मिलित होने का प्रयत्न प्रारम्भ किया। प्रायः एक घंटे के बाद जब डीडी लघुशंकरार्थ जाने हेतु उठे तब उनके अधिक जल्दी उठ जाने का स एज ही मैंने कारण पूछा। पुनः ध्यान में बैठते हुए उन्होंने मुझे इतना ही उत्तर दिया कि, 'पंडितजी अंकारनाथजी मुझे उनकी अंतिम नूतन संगीत-रचना सुनाने बुला रहे हैं'—और वे पुनः ध्यानस्थ बन गये—पंडितजी के साथ अपना दूरस्थ अंतस्-तार जोड़ते हुए। अपनी इस प्रिय आत्मजा को वे मुँह से बीमारी के बिछौने से अंतिम वात्सल्यपूर्ण दिव्यसंगीत सुना रहे थे!! प्रायः साढ़े पाँच बजे डीडी ने आँखें खोलकर, यह स्पष्टीकरण करते हुए कहा—

'पंडितजी की मलायात्रा आरम्भ हो गई... उन्होंने अपने पार्थिव शरीर का त्याग कर दिया!!!'

"वे पुनः मेन में संचरण कर गये। प्रातःकाल छह बजे के आँल इन्डिया रेडियो ने पंडितजी के देहत्याग के समाचार देकर माझी डी—डीडी के इस दूरस्थ दर्शन और श्रवण की—*clav-vnyance & Mental telepathy* की! 'मत जा' जानियाला जोगी स्वयं ही अगम-यात्रा पर निकल चुका था!! ओं शक्ति॥

"दूसरे दिन मधिर बैठक में डीडी ने पंडितजी को अध्यात्मिक डी और प्रेमलताजी ने दूधदू अंकारनाथजी के ही स्वरों में 'जोगी मत जा!' गाकर सभी की अश्रुधारा बहा दी।"

नाद-योगी अंकारनाथजी तो नादलोक में सिधार गये और उनकी यह नादयोगिनी आत्मजा जीवनभर उनके ^{आराधना} आराधना-अनास नद का अनुवृत्तन करती रही—'नादात्मक जगत्' को मूर्त रूप देती हुई और अपनी नाद साधना में 'आदिनादम् अंकारम्' अपनी यह विनयमयी सरल विभक्त पद्धति करती हुई। बड़ी ही दृष्ट्य है, उपडिप है उनकी यह नाद-युक्त रचना:

हमारी स्वयं की उपर्युक्त 'ॐकार नादध्यान' की उपासना, अनेक सार्थक-मित्रों के अनुरोधों के कारण एक प्रयोग के रूप में स्वस्म्यरूप (Recorded form) भी लिखी रही थी। हमारी 'ध्यान संगीत' की कोल्लेक्ट डिस्क/कैसेटे म्यूजल में ये है उसके जेकट्स।



OMKAR NADA - DHYANA

• ॐ •

INDICATIONS OF OMKAR NADA : NADA - BRAHMA & SHABDA - BRAHMA

OMKARA NADA-BRAHMA EXPANDING IN SHABDA-BRAHMA AND SHABDA-BRAHMA MATRIKA, THE MOTHER OF ALL MANTRAS, LEADING TO SELF MEDITATION AND SALVATION ULTIMATELY:

"In the beginning of this AVSARPINI Age, Bhagawan Rishabh Deva had shown, explained and taught MATRIKA to Mahasati Brahmi. Perfect SHABDA-BRAHMA form MATRIKA consists of four speeches Para, Pashyanti, Madhyama, Vaikhari. Matrika is originated from the lotus-mouth of Bhagawan Adinath Rishabh Deva, it is established from time immemorial, it is the source of all scriptures. Matrika is beginningless and endless. It is the supreme post of principles and Supreme light of soul. All scriptures originate from the letters of Matrika, just as blooming buds from seed."

— SIDDHA MATRIKABHIDHARMA : "YOGASHASHTRA" : KALIKALA —

— SARVAJANA SRI HEMCHANDRACHARYA. P.P. 12.

OMKAR - THE BOW:

"The sacred word ("OM") is called the bow, the arrow the soul, and Brahman its aim; he shall be pierced by him whose attention does not swerve. Then he will be of the same nature with him (Brahman) as the arrow (becomes one with the aim when it has pierced it).

"On him are based the heavens, the earth, the atmosphere, the mind with all the organs. Him ye know as the one soul alone. Dismiss (all) other words; he is the bridge to immortality.

"Within (the heart), which the arteries enter as the spokes the nave of the wheel, he moves becoming manifold (=modifications of seeing, hearing, wishing, etc.). You meditate on him (on the soul) by the word "OM". Be welfare to you that you may cross over the sea of darkness."

— THE MUNDAKA - UPANISHAD * THE TWELVE PRINCIPAL UPANISHADS

By Dr. E. Roer, Theosophical Publishing House, Adyar 4,5,6 PP. 157 - 58.

Meditation Experiment Guide Line : Pl. be seated better in Padmasana or lie down in Shavasana-Yoganidra position and begin your internal journey with joy.

Concept, Script, Commentary, Singing : Blessed by Great Masters, Prof. Pratapkumar J. Toliya
Co-rendering : Smt. Sumitra P. Toliya, M.A. Sangeet Visharada, Kurn. Nandini Rao, Award winner

Bases of Ragas : Durga, Pahadi, Bageshri, Shivananjani, Malkauns, Jogiya, Bhairavi.

Copyright Producers : Vardhaman Bharati International Foundation,

Prabhat Complex, K.G. Road, Bangalore - 560 009, INDIA Phone : 091-080-22251552, 26667882.

U.S.A. : Mehtas : Ph. : 781-344-6030 (R) Canada : Falguni : Ph. : 604-576-4350 (R)

Copying in any form, by any one, for any purpose is illegal & prohibited

(कमरा:)

इन सारे सन्दर्भों में, डीडी ने यहाँ ऊपर उल्लिखित ॐ कार-मर्म हमें समझाया और उसके उपर्युक्त काव्य का अपना हस्तलिखित कागज पत्र भी दिया। उसके मूल में हमारा जो लिखित प्रश्नपृच्छा-पत्र डीडी के प्रति था वह इस प्रकार था:—

बैंगलोर, पूर्णिमा-पूर्णातिथि, अरु, 24-2-05

" परम पूज्या डीडी,
संक्षिप्त अभिवन्दना / 2-2-05 के कृपा-पत्र के लिये अनुग्रहीत हूँ / हम सब धन्य
हूँ। * * * * *

पत्रान्त में आपने अपने 'दर्शन-प्रणाम' बंद करवाने के विषय में डीडी ही लिखा है। वह उचित ही है। मान-पूजादि से उद्-आसीन आपकी ऊर्ध्वात्मा के लिये यह सहज स्वाभाविक ही है। हम उसमें मनसा भी व्ययधान डालना अपराध समझेंगे। परन्तु 'दर्शन की अनुमति की गलति' कर 'तंग' करने की मेरी पिछले पत्र की बात का तात्पर्य आप से अधिक बोलने-बुलवाने-चर्चा करवाने के श्रम से मुक्त रखकर केवल 'मौन' संघट्ट में समीप आनेका था। और आप से 'संपाद' 'मौन' में ही नहीं होता क्या? मुस्कर संघाट (जिज्ञासा-प्रश्नचर्चा का 'संपाद') भी करना बहुत कुछ शेष है। कई प्रश्न आप से (समझ हेतु, वाद-विवाद हेतु नहीं) करने लाकार वर्ष से बाकी है— तात्त्विक ही। ये पीछे लिखे हैं। यहाँ मिलने पर आप ऊपर-समाधान दें, या अनुकूलता हो तब पत्र से।

" वाद-विवादार्थ नहीं, समझ-जिज्ञासा-संवादार्थ (यह किन्ना पृच्छा है, परीक्षा-प्रश्नापत्ती नहीं) * पूज्या विमला डीडी से

" ॐ कार की आपकी अद्भुत, अप्रतिम, अनन्य सार्धना है। सार्धना ही नहीं, सायुज्य, सामीप्य, तादात्म्य है। ॐ कार आपका अधिकार क्षेत्र है।

" जैसा कि इस अल्पात्मा ने किंचित जाना है, 'ॐ' सत्-चित्-आनन्द है, श्रव्य का एवं सृष्टि का अंतिम 'अस्तित्व' है, सहजात्म का ही स्वरूप है, जैन दर्शनानुसार २४ तीर्थंकरों का प्रतीक स्वरूप है, तीर्थंकरों की दिव्य उशानापाणी का प्राकट्य, अभिव्यक्तिकरण-सी 'दिव्यध्वनि' है ('दिव्यध्वनिर् भवति ते विशदार्थ सर्व' — श्री. भक्तामर स्तोत्र)। वैखरी-मध्यमा-परमन्ति के पार का 'परा' पाणी का रूप है, इत्यादि। (वेदान्त दृष्टि से उत्पत्ति-स्थिति-लय ब्रह्मा-विष्णु-महेश है।)

" परन्तु ~

" आपकी, आप स्वयंकी प्रतीतिधारा-अनुमतिधारा में ॐ कार का रहस्य क्या है? तात्पर्य क्या है? अर्थ और महत्त्व क्या है? आप अपनी रस

ॐ कार
विषय
तात्त्विक
पृष्ठ

अनुश्रुति-प्रतीति की अभिव्यक्ति क्या (बोड़ी-सी कृपा कर) हमारे ऐसे करेगी? (आपने 14-8-1999 को आषू में अपनी एक संस्कृत काव्यरचना कुछ 'ॐकारं आदि-नाद' जैसी सुनाई थी, यह आप हमें स्वरस्थ करने की अनुमति सह भेजेंगी?)

"या तो आपकी यह अनुश्रुति कबीर के 'गुं के गुड़' जैसी एवं उपनिषद् के 'नेति नेति' की भाँति अथवा श्रीमद्गी के 'कही शक्या नहीं' तै पण थी भगवान जो ।" (-अपूर्वअवसर) के अनुसार

अनिर्वचनीय, अभिव्यक्ति-अक्षम है?

(हमारी 'ॐकार नाद ध्यान' शीर्षक पूर्व-प्रेषित सी.डी. के संदर्भ में-)

① 'ॐकार आदि' नाद या 'अनादि' नाद? ('आदिनाद ॐकार' निकस्क-एक)

② ॐकार की समाधिष्ट करनेवाली यह सृष्टि (जगत) अनादि-अनंत

या साधि-सांत?

③ सृष्टि के तत्त्व, समष्टि तत्त्व, प्रकृति, पंचमहाशु अनादिअनंत या साधिसान्ति?

④ कर्म अनादि-अनंत या अनादि-सांत? कर्मबन्ध प्रथम कब और कब प्रारम्भ?

⑤ आत्मा तो अनादि-अनंत ही न? 'सर्वत्रिभ' न? ('त्रिन्ना -

-प्रत्येजात्मन' - तत्त्वार्थ सूत्र)

⑥ आत्मा का - शुद्ध चैतन्य मय आत्मा का - स्वरूप ही ॐकारमय? शून्य/पूर्णमय?

⑦ वास्तविक प्रणवनाद - ॐकारनाद मौन से, अंतमौन से ही उठता है? उससे ही उसके अनुनाद उठते हैं? (आपकी 'मौन के अनुनाद', हमारी अनंत की अनुश्रुति' कृतियों के संदर्भ में।)

⑧ ॐकार आहत नाद' का स्वरूप या अनाहत नाद का?

⑨ प्रणवनाद-प्रणवगान आहत नाद से अनाहत नाद में संचरण ही सकता है न? (हमारे विन्म 'ध्यान-संगीत' के प्रयोग के संदर्भ में है यह। नाद, शब्द या ध्वनि/स्थ।)

ध्यान ⑩ ॐकार-ध्यान अंतिम स एजापस्था, स्वयं की अपस्था, आत्मस्थिति में ली जा सकता है?

⑪ विशुद्ध स एजापस्थामय आत्म-ध्यान ही केवलज्ञान (एवं ज्ञानशुभ्र) और जाने का स्थान है। इस में ॐकार का विनियोग-उपयोग कैसे, कैसे? ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

"यह सारी तात्त्विक प्रच्छा केवल स्वावुभय जानने हेतु शास्त्रों, ग्रंथों की नहीं, प्राप्तात्मा-दर्शनात्मा-ज्ञानात्मा जैसे आप की स्वयं की अनुश्रुति की, आत्मप्रकाश की प्रतीति की दृष्टि समझने, उससे

अनुश्रुति-प्रतीति की अभिव्यक्ति क्या (बोड़ी-सी कृपा कर) हमारे हृदये करेगी? (आपने 14-8-1999 को आषू में अपनी एक संस्कृत काव्यरचना कुछ 'ॐकारं आदि-नाद' जैसी सुनाई थी, यह आप हमें स्वरस्थ करने की अनुमति सह भेजेंगी?)

"या तो आपकी यह अनुश्रुति कबीर के 'गुं के गुड़' जैसी एवं उपनिषद् के 'नेति नेति' की भाँति अथवा श्रीमद्गी के 'कही शक्या नहीं' तै पण थी भगवान जो ।" (-अपूर्वअवसर) के अनुसार अनिर्वचनीय, अभिव्यक्ति-अक्षम है?

(हमारी 'ॐकार नाद ध्यान' शीर्षक पूर्व-प्रेषित सी.डी. के संदर्भ में-)

① 'ॐकार आदि' नाद या 'अनादि' नाद? ('आदिनाद ॐकार' निकरकां एषः)

② ॐकार की समाधिष्ट करनेवाली यह सृष्टि (जगत) अनादि-अनंत या साधि-सांत?

③ सृष्टि के तत्त्व, समष्टि तत्त्व, प्रकृति, पंचमहाशु अनादिअनंत या साधिसान्ति?

④ कर्म अनादि-अनंत या अनादि-सांत? कर्मबन्ध प्रथम कब और कैसे प्रारम्भ?

⑤ आत्मा तो अनादि-अनंत ही न? 'सर्वत्रिध' न? ('त्रिधा - प्रत्येजात्मन' - तत्त्वार्थ सूत्र)

⑥ आत्मा का - शुद्ध चैतन्य मय आत्मा का - स्वरूप ही ॐकारमय? शून्य/पूर्णमय?

⑦ वास्तविक प्रणवनाद - ॐकारनाद मौन से, अंतमौन से ही उठता है? उससे ही उसके अनुनाद उठते हैं? (आपकी 'मौन के अनुनाद', हमारी अनंत की अनुश्रुति' कृतियों के संदर्भ में।)

⑧ ॐकार आहत नाद' का स्वरूप या अनाहत नाद का?

⑨ प्रणवनाद-प्रणवगान आहत नाद से अनाहत नाद में संचरण ही संभव है न? (हमारे विनम्र 'ध्यान-संगीत' के प्रयोग के संदर्भ में है यह। नाद, शब्द या ध्वनि/स्थ।)

ध्यान ⑩ ॐकार-ध्यान अंतिम स एजापस्था, स्वयं की अपस्था, आत्मस्थिति में लि जा सकता है?

⑪ विशुद्ध स एजापस्थामय आत्म-ध्यान ही केवलज्ञान (एवं ज्ञानशुभ्र) और जाने का स्थान है। इस में ॐकार का विनियोग-उपयोग कैसे, कैसे? ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

"यह सारी तात्त्विक प्रश्न केवल स्वावुभव जानने हेतु शास्त्रों, ग्रंथों की नहीं, प्राप्तात्मा-दर्शनात्मा-ज्ञानात्मा जैसे आप की स्वयं की अनुश्रुति की, आत्मप्रकाश की प्रतीति की दृष्टि समझने, उससे

भी इस विषय में विचार विमर्श करने का, पूछने का, अनुसंधान किया था।
परन्तु प्रणवानु अँकार सह द्वीती के अनुसंधान का रहस्य-भेद
हमने उनके देहत्याग के महाप्रस्थान के बाद अपनी ध्यान-चिन्ता में और
उनके इस काव्य में स्वरूप से पाया। 'पूर्णत्व' शीर्षक उनकी इस
अभिव्यक्ति में उनका प्रतिपादन कि "ब्रह्मण्ड सिमरा प्रणव में, प्रणव
सिमरा बिंदु में, उस बिंदु के निज गर्भ में.... हम जा कसे हैं.....
अर्ध मात्रा प्रणव की, पावन गुफा है विमल की...." बड़ा ही सूचक,
सांकेतिक, सुस्पष्ट है। "ॐकारं बिन्दु संयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।"
के अँकार वन्दना के श्लोकों का प्रतिपादन माना साकार रूप दे देता
है। द्वीती के लिये वह अब 'ध्यान' का विषय नहीं रहा था, उसमें
संस्थिति, 'तिरोधान' परमपद पूर्णत्व प्राप्ति का स्थान माना ^{धन}
गया था। उनके इस प्राप्तव्य का, अनुभूति की अभिव्यक्ति का ^{उनका} यह
मात्र ही अनुभव-ज्ञान बड़ा ही दृष्टव्य, चिंतव्य, अप्रतिहत है:—

पूर्णत्व

"हम जा कसे हैं अगम में
जहाँ दिन नहि ना रात है,
सूरज नहि ना चाँद है,
नित तेज के उस लोक में.... हम जा कसे हैं०

"पृथ्वी समाई आप में
जलधि समाया अगन में,
अग्नि समाया पवन में,
और पवन सोया गगन में.... हम जा कसे हैं०

"ब्रह्मण्ड सिमरा प्रणव में
प्रणव सिमरा बिंदु में
उस बिंदु के निज गर्भ में.... हम जा कसे हैं०

"अर्ध मात्रा प्रणव की
पावन गुफा है विमल की
पह गुफा है विमल की
उस गुफा के शून्य में
निष्कल अगम निष्पंद है
शून्यत्व ही पूर्णत्व है
शून्य के उस पूर्ण में.... हम जा कसे हैं...।"

("मौन-निनाद")

— 'न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकः।' और कोटि सूर्य जहाँ नाथे लथवाली उक्तियों की स्मृति
दिलानेवाली अस्तीकातीत आत्मलोक की, अँकार की अँतगुफा के अगम-वास में विराजित अवस्थित

भी इस विषय में विचार विमर्श करने का, पूछने का, अनुसंधान किया था।
परन्तु प्रणवानु अँकार सह द्वीती के अनुसंधान का रहस्य-भेद
हमने उनके देहत्याग के महाप्रस्थान के बाद अपनी ध्यान-चिन्ता में और
उनके इस काव्य में स्वरूप से पाया। 'पूर्णत्व' शीर्षक उनकी इस
अभिव्यक्ति में उनका प्रतिपादन कि "ब्रह्मांड सिमरा प्रणव में, प्रणव
सिमरा बिंदु में, उस बिंदु के निज गर्भ में.... हम जा कसे हैं.....
अर्ध मात्रा प्रणव की, पावन गुफा है विमल की...." बड़ा ही सूचक,
सांकेतिक, सुस्पष्ट है। "ॐकारं बिन्दु संयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।"
के अँकार वन्दना के श्लोकों का प्रतिपादन माना साकार रूप दे देता
है। द्वीती के लिये वह अब 'ध्यान' का विषय नहीं रहा था, उसमें
संस्थिति, 'तिरोधान' परमपद पूर्णत्व प्राप्ति का स्थान माना ^{धन}
गया था। उनके इस प्राप्तव्य का, अनुभूति की अभिव्यक्ति का ^{अनुरोध}
मात्र ही अनुभव-ज्ञान बड़ा ही दृष्टव्य, चिंतव्य, अपरिहृतव्य है:-

पूर्णत्व

"हम जा कसे हैं अगम में
जहाँ दिन नहि ना रात है,
सूरज नहि ना चाँद है,
नित तेज के उस लोक में.... हम जा कसे हैं०

"पृथ्वी समाई आप में
जलधि समाया अगन में,
अग्नि समाया पवन में,
और पवन सोया गगन में.... हम जा कसे हैं०

"ब्रह्मांड सिमरा प्रणव में
प्रणव सिमरा बिंदु में
उस बिंदु के निज गर्भ में.... हम जा कसे हैं०

"अर्ध मात्रा प्रणव की
पावन गुफा है विमल की
पल गुफा है विमल की
उस गुफा के शून्य में
निष्कल अगम निष्पंद है
शून्यत्व ही पूर्णत्व है
शून्य के उस पूर्ण में.... हम जा कसे हैं...।"

("मौन-निनाद")

- 'न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकः।' और कोटि सूर्य जहाँ नाथे लथवाली उक्तियों की स्मृति
दिलानेवाली अस्तीशकती आत्मलोक की, अँकार की अंतगुफा के अगम-वास में विराजित अवस्थित

(check)
तक ११

30

दूसरी ओर से हमें अपना आत्म-साक्षात्कार का, देह छोटे हुए विद्विष्य प्राप्त करनेका, गाये हुए रिकार्ड-संगीत को जीवन में उतारकर अनुभव करने का लक्ष्य सुदृढ़ कराती हुई हमें यह कहकर ऊपर उठाती रही:-

"आप उस 'कलाकार' भिड़कर 'जीवनसाधक' बनें और अंतर्संगीत द्वारा सर्वोच्च देहमिन्न विद्विष्य को प्राप्त करें।"

आत्मा है नित्य है, सभी परमगुरुओं, संतों, तत्त्वदर्शियों एवं साधनाओं के सार-निष्कर्ष रूप में प्रकट हुआ यह संदेश था। उसमें श्रीमद्गीता-इति 'देहमिन्न केवल चैतन्य' के अनुभव-ज्ञान को पाने का ही संकेत, दिशा-निर्देश था। विमलसरिता सह अंतर्दृष्टि की यात्रा का यह महत्त्वपूर्ण प्रतिकलन, प्रतिरूप, प्रतिदर्शन निहित था। अनेक परमगुरुओं का प्रतिरूप, सदा सर्वदा निष्कल-निष्कल-निर्मल-विमल ऐसी "विमलसरिता" का, सारे जीवन को परिप्लावित, परिशुद्ध, परितृप्त, कृतकृत्य, गंतव्य-सन्तुष्ट करा देने का यह कितना बड़ा प्रज्ञान है, कितना विशाल अनुग्रह है? इनके माध्यम से मानों परम कृपापुत्र के ही परमाग्रहः

"प्रत्यक्ष परमगुरु-आपि का माने परम उपकार, तीनों योगात्मक से धर्म जागरण!"



विडह्याग

(विमलदीप्ति के स्वेच्छिक समाहित्युक्त डेल्याग के फर्यात)

धो

विमलाताई 'वर्तमान' में जीवन भर स्थित रहकर, पल पल में पूर्ण आनन्द-रस छलकाती हुई जी गई। उनके अंतरघट से छलकते हुए इस जीवनरस में निकट सम्पर्क में आनेवाले सभी को सराबोर डुबोती-नहाती हुई, जीने की ओर मस्के की भी एक कला सीखलाती गई। अपनी जीवनसंध्या में तो कृत-कृत्य लेकर इस का उन्होंने अनुभव किया। उनकी ही इस कविता में, उनके धट से छलकते हुए इस आनन्द-रस की अनुभूति की कितनी सुंदर, मर्मपूर्ण अभिव्यक्ति हुई है!

"जीवन की इस मधुसंध्या में, धट से जीवनरस छलके।

चित्त में संचित जीवनसौरभ, सुरभित काया को कर डे।

दो नयनों की मधुशाला में, पलकों की धाली छलके.....

परा

मौन निलय में 'परा' मात के, मुग्ध नाद बिन्दु छलके;

'पश्यन्ति' में ही अभिसंचित, मुखरित 'मध्यम' में गुंजे.....!

स्फुट 'वैखरी' में अमृतधार, रसमय सञ्जीवक प्रकटे,

दशेन्द्रियों से छलके हरिस्स, संध्या हरिमय झिल्लि धरे.....!

जीवन की इस मधुसंध्या में, धट से जीवनरस छलके;

मौन-निष्पन्न

विमल विलास रसेश्वर हरि का, जन्म मृत्यु महारास बने...!"

1 "परा-पश्यन्ति-मध्यमा वैखरी" के अर्धमुख बाणी-रूपी कारा (मौन के अनुनाद)

1 'रसो वै सः' उस परम रसमय रसेश्वर प्रभु का विमलादीनितो जन्म-मृत्यु दोनों का 'महारास' रचा दिया, उस 'परम महारास' को चरख लिया, जो उनके महदंश के जीवन-वास अर्बुदायल की अवधूतों की धरा पर अभी अभी के अवधूत आनन्दघनजी ने चाखा और गाया था —

"अवधू ! नाम हमारा रखे

सोइ परम महारास चाखे...!"

विमलाजी ने इस परम 'महारास' को चखा भी और उसका जन्म-मृत्यु दोनों का 'महारास' रचाया भी। तभी तो अवधूत अर्बुद-धरा पर उनके डेह के-स्थूल डेह के-उत्सर्ग समय पर मानों आनन्दघनजी की ही यह जीवनरस-धारा अमृतवर्षा करती हुई 'परा'-प्रदेश से आकर शैजती ली —

"अब हम अमर भये न मरेंगे...."

॥ था कारण मिथ्यात्व दियो तज, वयं कर देह धरेंगे ?... अब हम
 देह विनाशी हम अविनाशी अपनी गति पकरेंगे ।
 नाशी जाशी हम विरवासी, चोखे लहे निखरेंगे... अब हम
 मर्यो अनंत धार 'बिन समज्यो', अब सुख-दुःख विसरेंगे,
 आनन्दमय निपट निकट अक्षर हो, जो नहीं समरे सो मरेंगे ।
 अब हम अमर भये न मरेंगे ॥

(आनन्दमय पद रत्नावलि)

तो जिस विमलात्मा ने अपने निपट निकटस्थ 'मौन निलय' में 'पर' वाणी के हो अक्षर साधकर छलका दिये, बिखरा दिये, बाँट दिये, उनके
 पुष्टि गई १ कहाँ मृत्यु ? कहाँ जन्म ? वे तो इन दोनों और अन्य सभी कुन्कों से
 पार परम चरम अमरता में, अनंतता में !

जीवन में, इस जन्म में, देह में रहते हुए भी वे आनन्दमयजी
 और श्रीमद् राजचक्रजी वत् 'देहातीत दशा' में रही, जैसा कि उन्होंने
 स्वयं अपना अनुभव लिखा —

“ देह में रहते हुए, विषयभर में व्याप्त होने की प्रतीति,
 कितनी अद्भुत है ।

'मम' भाव से सर्वथा अस्पृष्ट

'अहमस्मि' प्रत्यय कैसा विलक्षण है । ॥ ('मौन के अनुनाद')

“ आज अन्तरंग में अमृत-धारा छलिरें ले रही है

उसके कल्लोल से तीनों भुवन भीगा जाये है

आज उस अनुभूति के निशिर में,

पारों पाचारों गह आई है ।

शब्दों के परिधान उतार कर

उन्होंने मौन-वासन पहन लिये है ।

आज दिक-काल के उस पार

अपारिधि आनन्द का समारोह है ।

शब्द-बन्ध तोड़ कर चित्त

चेतन्य की धारा में समाधिस्थ है । ” ('अराध की ओर')

शब्दातीत, देहातीत, मनसातीत अद्भुत आनन्दमय आत्मानुभूति—
 जीवमानुभूति युक्त 'देहवास-जीवनवास' स्नेह-सख्य-सौहार्द सह जीने के
 (जगकर जीने के) बाद विमलात्मा को जब देह के ती परिधान को उतारने
 का समय निकट डीखाई दिया, तब तैयारी की 'अन्विष्टा' करने की—

॥ था कारण मिथ्यात्व दियो तज, क्यों कर देह धरेंगे ?... अब हम
 देह विनाशी हम अविनाशी अपनी गति पकड़ेंगे ।
 नाशी जाशी हम विश्वासी, चोखे लहे निखरेंगे... अब हम
 मर्यो अनंत धार 'बिन समज्यो', अब सुख-दुःख विसरेंगे,
 आनन्दमय निपट निकट अक्षर हो, जो नहीं समरे सो मरेंगे ।
 अब हम अमर भये न मरेंगे ॥

(आनंदमय पद रत्नावलि)

तो जिस विमलात्मा ने अपने निपट निकटस्थ 'मौन निलय' में 'पर' वाणी के हो अक्षर सार्धकर छलका दिये, बिखरा दिये, बाँट दिये, उनके
 पुष्टि गई १ कहाँ मृत्यु ? कहाँ जन्म ? वे तो इन दोनों और अन्य सभी कुन्कों से
 पार परम चरम अमरता में, अनंतता में !

जीवन में, इस जन्म में, देह में रहते हुए भी वे आनंदमयजी
 और श्रीमद् राजचक्रजी वत् 'देहातीत दशा' में रही, जैसा कि उन्होंने
 स्वयं अपना अनुभव लिखा —

“ देह में रहते हुए, विषयभर में व्याप्त होने की प्रतीति,
 कितनी अद्भुत है ।

'मम' भाव से सर्वथा अस्पृष्ट

'अहमस्मि' प्रत्यय कैसा विलक्षण है । ॥ ('मौन के अनुनाद')

“ आज अन्तरंग में अमृत-धारा स्तिरित ले रही है

उसके कल्लोल से तीनों भुवन भीगा जाये है

आज उस अनुभूति के निशिर में,

पारों पाचारों गह आई है ।

शब्दों के परिधान उतार कर

उन्होंने मौन-वासन पहन लिये है ।

आज दिक-काल के उस पार

अपारिधि आनन्द का समारोह है ।

शब्द-बन्ध तोड़ कर चित्त

चेतन्य की धारा में समाधिस्थ है । ” ('अराध की ओर')

शब्दातीत, देहातीत, मनसातीत अद्भुत आनन्दमय आत्मानुभूति—
 जीवमानुभूति युक्त 'देहवास-जीवनवास' स्निह-सख्य-सौहार्द सह जीने के
 (जगकर जीने के) बाद विमलात्मा को जब देह के ती परिधान को उतारने
 का समय निकट डीखाई दिया, तब तैयारी की 'अन्विष्टा' करने की—

७५

इस नन्ही भोली गुड़िया के ओर बड़ी सयानी बूढ़िया के भी इन प्रश्नों का किसी के पास उत्तर नहीं था— शायद सात वर्ष के बाल रायचन्द जैसे उसकी उम्र थी, जिसने मृत्यु को सर्वप्रथम देखा था— अभीचन्द जैसे प्यारभरे बुर्रा के डेर छोड़ने पर।

परन्तु आत्मानुभव संपन्न विख्याता विमलाडीडी की व्याख्या—
 विराट् आत्मा अपने नूतन ^{अग्नि-अध्यात्म-वर्षा} अगम-देश का और अगम-रूप का पता दे रही है— आनन्दघन, राजपन्द्र और कबीर जैसे आत्मानुभूत आत्माओं की— सी भाषा में ~

✓ "हम जा कसे हैं अगम में,
 जहाँ दिन नहीं, ना रात है!
 सूरज नहीं ना चाँद है,
 नित तेरे के उस लोक में.... हम जा कसे हैं!"

पृथ्वी समायी आप में
 जलधि समाया अगन में,
 अग्नि समाया पवन में
 और पवन सोया गगन में.... हम जा कसे हैं!
 ब्रह्मांड सिमटा प्रणव में,
 प्रणव सिमटा बिंदु में,
 उस बिंदु के निज गर्भ में... हम जा कसे हैं!

अर्ध मात्रा प्रणव की,
 पावन गुफा है विमल की
 वह गुफा है विमल की
 उस गुफा के शून्य में
 निष्कल अगम निष्पंद है
 शून्यत्व ही पूर्णत्व है

शून्य के उस पूर्ण में.... हम जा कसे हैं! " (मौननिन्द)

अपने इस अगम-देश की गगन-गुफा-अंतर्गुह्य का पता जिस धुंधलके के
 या अधुंधलके के लगे-न लगे, हमें तो सूरज उदय में सफाया
 डीडी के डेलित्य के मिलते ही, क्या क्या गुजरी हम पर, अल्पांश भी अल्प
 -व्यक्त करना सम्भव नहीं शब्दों में उस विरहनुशी की—

"सजीवनमूर्ति विन सब जग है सूना—

व्यथा का झरना पिघल पिघल कर हो गया है सूना
 बढ़ता दिन सूना रात चोखना—।"

७५

इस नन्ही भोली गुड़िया के ओर बड़ी सयानी बूढ़िया के भी इन प्रश्नों का किसी के पास उत्तर नहीं था— शायद सात वर्ष के बाल रायचन्द जैसे उसकी उम्र थी, जिसने मृत्यु को सर्वप्रथम देखा था— अभीचन्द जैसे प्यारभरे बुर्रा के डेर छोड़ने पर।

परन्तु आत्मानुभव संपन्न विख्याता विमलाडीडी की व्याख्या—
 विराट् आत्मा अपने नूतन ^{अग्नि-अध्यात्म-वर्षा} अगम-देश का और अगम-रूप का पता दे रही है— आनन्दघन, राजपन्द्र और कबीर जैसे आत्मानुभूत आत्माओं की— सी भाषा में ~

✓ "हम जा कसे हैं अगम में,
 जहाँ दिन नहीं, ना रात है!
 सूरज नहीं ना चाँद है,
 नित तेरे के उस लोक में.... हम जा कसे हैं!"

पृथ्वी समायी आप में
 जलधि समाया अगन में,
 अग्नि समाया पवन में
 और पवन सोया गगन में.... हम जा कसे हैं!
 ब्रह्मांड सिमटा प्रणव में,
 प्रणव सिमटा बिंदु में,
 उस बिंदु के निज गर्भ में... हम जा कसे हैं!

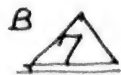
अर्ध मात्रा प्रणव की,
 पावन गुफा है विमल की
 वह गुफा है विमल की
 उस गुफा के शून्य में
 निष्कल अगम निष्पंद है
 शून्यत्व ही पूर्णत्व है

शून्य के उस पूर्ण में.... हम जा कसे हैं! " (मौननिन्द)

अपने इस अगम-देश की गगन-गुफा-अंतर्गुह्य का पता जिस धुंधलके के
 या अधुंधलके के लगे-न लगे, हमें तो शुरू उद्विग्न में सहाय
 सजीवनमूर्ति की डी के डेलिवर के मिलते ही, क्या क्या गुजरी हम पर, अल्पांश भी अल्प
 -व्यक्त करना सम्भव नहीं शब्दों में उस विरहनुशी की—

"सजीवनमूर्ति बिना सब जग है सूना—"

व्यथा का झरना पिघल पिघल कर हो गया है दूना
 बढ़ता दिन दूना रात चोखना—।"



और पृथ्वी जब सीढ़ियों चढ़कर ऊपर, उन्हीं सीढ़ियों से जब लहर लहर
आनन्द भरा जाता था और उन्हीं से भरा लहर लहर था— आता

"बाहर पत्ते झर रहे थे, भीतर कणों के पत्ते,
बाहर हवा बह रही थी, भीतर डीङ्गी की मस्ती-सुखी
बाहर जो नाद उठ रहे थे, भीतर अनन्द के बाद।
शिवकुटी के शिवमण्डल में : इस आत्म के रंगमण्डल में—

"बाहर से आसन सुना है (तोमर आसन शुद्ध काजि)

पर धुन्न-मल्ल में डीप जला है। बड़ा-गुना है।

बाहर के अब नाद-गायन सुन है, स्वामेश है

भीतर के अनन्द ढोल बजत है

कैसी ताई! यह लीला रचाई!

(एक ओर से साथ बर आया था विश्व-व्यथा का शरणा, तो दूसरी ओर
से अचानक ^{उस} रात ^{की} कोई आधी-पखीने दूसरा अंगुण्य कर दिया—

"पर्षा भर दी विमलात्माने

झोली भर दी विष्णुत्माने

तपन बुझा दी किम्पात्माने

दुर्लभ करा दिया विमलात्माने

और फिर कह दिया अगमिदुर्लभ ^{जो} इस विष्णुत्मा डीङ्गी से हमने:—

"डीङ्गी।

आप भले ही इस विष्णुत्मा से घिलीन हो गई हों।

शिवकुटी की अर्बुद-गुफा से अंतर्धनि हो गई हों।

आपने अगमिदुर्लभ की गगनगुफा में छिप गई हों।

भारत देश की बाहरी-गुफा से भाग गई हों।

पर कहाँ भाग सकोगी हमारी अंतर्गुफा से! छिप्यगुफा से
जरा भाग कर भी तो देखें।"

और हमारी यह अंतर्गुफा भी कहाँ कहाँ सजी श-समृद्ध हुई थी!

कभी श्रीमद् जी की इतर श्रमि पर आप ही के संग,

तो अनेकड़ा इस अर्बुदश्रमि पर भी आप ही के संग आत्मरंग

तो कभी शनकुट एपी की श्रमि पर परम अवस्था सरजानंद्यजी संग

और उनकी जगमाता आपकी-सी प्रतिधर्ति माँ धनदवीजी संग

तो कभी ^{मो विनम्रा} बाबा, चाचा, और डरि-डरिता पंडितजी संग—!

हैसे अनेक परमपुरुषों से समृद्ध सदा बहार हमारी अंतर्गुफा से आप

भाग कर भी तो देखें। उसमें एक नहीं, अनेक परमपरीजनों का जो वसंत

देरे, इसी अंतर्गति में तो विष्णु-आत्मा को विमल-निर्मल
 धरता ही रहेगा, सदा-सर्वदा जीवनमर ।
 परन्तु देखता है ताकता है फिर शिवकुटी की ओर —
 तो दीखता है —

"बह गया है
 बह गया है वह शांत-प्रशांत विमल-निर्मल निर्भर —
 जीवनमर जो धरता रह था —

आद्यान्त, अनयुरधु, अपिराम —
 कलकल, निनाद करता हुआ, किलकिलाता हुआ,
 ऐसता-ऐसाता, खिलता-खिलाता हुआ
 विमलानन्द में झुमता झुमाता हुआ
 अब 'अनंत' की ओर बह गया है

(को) 'शांत' हस्ती मिया गया है ।
 शांति-पारावार में घुलमिल गया है,
 परम-प्रशांति में विलीन हो गया है,
 विराट-विष्णु में विष्णुरूप-विष्णु-आत्मा धन सूर्य-व्याप्त बन गया है ॥

✓ "और अब समाधि हो गई है, निःस्तब्ध निःशब्द हो गई है —
 अतीत-अयधूता की यह अर्ध-श्रमि, स्थात आर्ति की आत्मार्थन श्रमि,
 अनंदघन की यह विहार श्रमि, अनंतात्माओं की योगसाधन श्रमि ।
 विमलात्मा ने भी यहाँ आलस्य जगाई
 जागा उठी थी स्पंदित (निश्चिन्ता) अखिलाई ।
 कंडराहँ गिरिपर की, उपत्यकाहँ गह्वर की,
 शांत सरित सर जल, कलकल निर्भर की —
 विखरी यहाँ सकल सचराचर सृष्टि निसर्ग की
 मनुज के ऊर्ध्वमुख-उर्ध्वपाद हेतु परम संसर्ग की ।
 ... अब सब समाधि हो गई है, निःस्तब्ध निःशब्द हो गई है —
 अतीत-अयधूता की यह अर्ध-श्रमि ... ॥

जब और सायक-जनों के भाव-जगत में, भीतरी और बाहरी जगत में, ऐसी
 बड़ी धटना घट गई है — भुग की एक भुगदल विष्वद मलालनी के इस
 जहाँ से उठ जाने की, तब हमारे राजनेता ? हमारे प्रचार-माध्यम ?
 तो आकाशवाणी-दूरदर्शन की तन्त्रिक-से समाचार तक उनके की पड़ी गयी —
 जब कि 'हरे जेरे नाथु खैरे' के दर से समाचार धड़ल्ले से ये डूँते रहे !

देरे, इसी अंतर्गति में तो विष्णु-आत्मा को विमल-निर्मल
 धरता ही रहेगा, सदा-सर्वदा जीवनमर ।
 परन्तु देखता है ताकता है फिर शिवकुटी की ओर —
 तो दीखता है —

"वह गया है
 वह गया है वह शांत-प्रशांत विमल-निर्मल निर्भर —
 जीवनमर जो धरता रहता था —

आद्यान्त, अनयुरधु, अपिराम —
 कलकल, निनाद करता हुआ, किलकिलाता हुआ,
 ऐसता-ऐसाता, खिलता-खिलाता हुआ
 विमलानन्द में झुमता झुमाता हुआ
 अब 'अनंत' की ओर धर गया है

(को) 'सांत' हस्ती मिर गया है ।
 शांति-पारावार में घुलमिल गया है,
 परम-प्रशांति में विलीन हो गया है,
 विराट् विष्णु में विष्णुरूप-विष्णु-आत्मा धन मूर्त्यव्याप्त धन गया है ॥

✓ "और अब समाधि हो गई है, निःस्तब्ध निःशब्द हो गई है —
 अतीत-अवधूता की यह अर्धश्रुति, स्थात आर्ति की आत्मार्थन श्रुति
 आनंदघन की यह विहार श्रुति, अनंतात्माओं की योगसाधन श्रुति ।
 विमलात्मा ने भी यहाँ आलस्य जगाई
 जागा उठी भी स्पंदित (निश्चिन्ता) अखिलाई ।
 कंडराहँ गिरिपर की, उपत्यकाहँ गह्वर की,
 शांत सरित सर जल, कलकल निर्भर की —
 विखरी यहाँ सकल सचराचर सृष्टि निसर्ग की
 मनुज के ऊर्ध्वमुख-उर्ध्वपाद हेतु परम संसर्ग की ।
 ... अब सब समाधि हो गई है, निःस्तब्ध निःशब्द हो गई है —
 अतीत-अवधूता की यह अर्धश्रुति ... ॥

जब और सायक-जनों के भाव-जगत में, भीतरी और बाहरी जगत में, ऐसी
 बड़ी धरना धर गई है — भुग की एक भुगद्वारा विष्वद्वारा महाएस्ती के इस
 जहाँ से उठ जाने की, तब हमारे राजनेता ? हमारे प्रचार-माध्यम ?
 तो आकाशवाणी-दूरदर्शन की तन्त्रिक-से समाचार तक उनके की पड़ी गयी —
 जब कि 'हरेजरे नाथु सैरे' के दर से समाचार धड़ल्ले से ये डले रहे !

महाभारतआनंदघन की धरा पर

सूखे पतझड़-भरे पेड़ों पर
खिले केसरिया पुष्प पलाश
वैसे खिल उठ रहे मम शूङ्क धड़ से
रसभर अनुभव-सुमन चौपट...
—सूखे 1

अर्धुदाचल की अशम धरा पर,
'आनंदघन' की अनुमल सरा पर,
आनंद अंतर का लगा लहराने,
अभिनय नितवृत्तन अनुभव वास्त

युगयुगों की मिरात पास
—सूखे 2

एक प्रकाश मेड़ता से उठा
अर्धु-धरा पर आजीव्य मरक;
कालांतर में पवानिया जाकर
राय 'राजचन्द्र' में किया निवास

—सूखे 3

नहीं अतीत, नहीं कोई अनागत ।
"इस पल" का (यहाँ) सदा-सुस्वागत ॥
(वर्तमान)

आनंदघन की अर्धु-धरा पर,
अपधूतों की अद्भुत धरा पर, आहता की अतीत धरा पर...
✓ काल ठहर गया वर्तमान में आकर, विमलात्मा के विमलद्वि में पल भर।
अभी-अभी ही था 'नहीं' कभी-भी, वर्तमान की यह अर्धु-अपधूत
आया है वह और अपसर...
"अपसर आया है वह अनमोल, साध ले शीघ्र, कर के मोल ॥"
झट-पट कर ले आत्मसिद्धि हम
ना करे रात्म-टोल ॥ अपसर आया एष अणमोल ।
(अरजानंद मुनि)

आनंदघन की अर्धु-धरा पर,
अपधूतों की अद्भुत धरा पर,
काल ठहर गया वर्तमान में आकर
विमलात्मा-विमलद्वि में पल भर। साध ले उनसे हम शीघ्र जल भर ।
विमलद्वि से हीप जल कर।
मकट

B 11

अभी तो यह थोड़ी सी काव्यजलि-शब्दांजलि यहाँ रुकती है, परन्तु अभी शेष है द्विजंगला विष्वात्मा विमलादीदी से हारे अभी के अनप्रेषित पत्र का प्रत्युत्तर पाना !

अभी अभी लिखे दीदी के नाम के इस पत्र को भेजने से पूर्व तो अचानक उनके मरणप्रमाण कह देने के समाचार पाये और उनसे सदा की भौति प्रत्युत्तर पाना शेष रह गया ! यह पत्र अब भेजे भी कहां उनके उस अगम देश में ? परंतु अपनी अंतुष्टि में विराजित दीदी को यह पत्र अवश्य दे सकेंगे। यह उन्हें सौंपकर प्रतीक्षा करेंगे उनके अनमोल-प्रत्युत्तर पत्र की। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर की भाषा में कहकर और यह लघु-कवित्त यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं कि-

"आमार चिट्ठी आशये कबे ?"

(कब आयेगी हमारी चिट्ठी ?)

} एक अनप्रेषित पत्र

✓ "लिखी चिट्ठी दीदी के नाम

घोड़ में कह दीं बातें तमाम;

शेष कुछ जोड़ने किया विलास तो

(दीदी ने) प्रस्थान कर दिया अपने धाम !

लिखी चिट्ठी दीदी के नाम ।

घोड़ा, पहुँचा दीदी के (शिवकुटी) धाम,

शून्य सब पाया सूम-साम;

पर 'शून्य' में भी 'हृत्सास' 'पूर्ण' का,

कराती रही वे अगम-अनाम

लिखी चिट्ठी दीदी के नाम !

सदा वे लिखतीं उत्तर अविश्राम

कभी आशीष, कभी विमल-प्रणाम;

अब आयेगा कब उत्तर अपना ?

आश लगाये बैठे हैं आतमराम-अपने राम ।

लिखी चिट्ठी दीदी के नाम !

पता नहीं यह होगा कब —

परन्तु 'शिवकुटी' की उस शनिवार 21 मार्च की सत्रा में फूट पड़ा सितार पर गाथा गुरुदेव रवीन्द्रनाथ की अंतिम यात्रा-प्राथना का 'शुमुखे शांति परावार' तब ! दीदी के स्मृति-संधान में, अंजलि-व्यधान में, निःशब्द के सशब्द परिधान में यह गुंजता रहा — "शुमुखे शांति परावार... भावओ तस्मी हे कर्णधार !"

"लहरा रहा है शांति-परावार समुद्र/धरा ले चलो उसमें जीवन-नेत्र, हे कर्णधार !"

B 11

अभी तो यह थोड़ी सी काव्यजलि-शब्दांजलि यहाँ रुकती है, परन्तु अभी शेष है द्विगता विष्णुत्मा विमलादीदी से हारे अभी के अनप्रेषित पत्र का प्रत्युत्तर पाना !

अभी अभी लिखे दीदी के नाम के इस पत्र को भेजने से पूर्व तो अचानक उनके मरणप्रमाण कह देने के समाचार पाये और उनसे सदा की भौति प्रत्युत्तर पाना शेष रह गया ! यह पत्र अब भेजे भी कहां उनके उस अगम देश में ? परन्तु अपनी अंतुष्टि में विराजित दीदी को यह पत्र अवश्य दे सकेंगे। यह उन्हें सौंपकर प्रतीक्षा करेंगे उनके अनमोल-प्रत्युत्तर पत्र की। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर की भाषा में कहकर और यह लघु-कवित्त यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं कि-

"आमार चिट्ठी आशये कबे ?" } एक अनप्रेषित पत्र
(कब आयेगी हमारी चिट्ठी ?)

✓ "लिखी चिट्ठी दीदी के नाम
घोड़ों में कह दीं बातें तमाम;
शेष कुछ जोड़ने किया विलास तो
(दीदी ने) प्रस्थान कर दिया अपने धाम !

लिखी चिट्ठी दीदी के नाम ।

दौड़ा, पहुँचा दीदी के (शिवकुटी) धाम,
शून्य सब पाया सूम-साम;
पर 'शून्य' में भी 'हृत्सास' 'पूर्ण' का,
कराती रही वे अगम-अनाम

लिखी चिट्ठी दीदी के नाम !

सदा वे लिखतीं उत्तर अविश्राम,
कभी आशीष, कभी 'विमल-प्रणाम';
अब आयेगा कब उत्तर अपना ?
आश लगाये बैठे हैं आतमराम-अपने राम ।

लिखी चिट्ठी दीदी के नाम !

पता नहीं यह होगा कब -

परन्तु 'शिवकुटी' की उस शनिवार 21 मार्च की सत्रा में फूट पड़ा सितार पर गाथा गुरुदेव रवीन्द्रनाथ की अंतिम यात्रा-प्राथना का 'शुमुखे शांति परावार' तब ! दीदी के स्मृति-संधान में, अंजलि-व्यधान में, निःशब्द के सशब्द परिधान में यह गुंजता रहा - "शुमुखे शांति परावार... भावओ तस्मी हे कर्णधार !"

"लहरा रहा है शांति-परावार सन्मुख/धरा ले चलो उसमें जीवन-नेत्रों, हे कर्णधार !"

B/12

क

"हे मुक्तिदाता ! तुम्हारी दया और तुम्हारी क्षमा तो बनेंगे चिरपाथे मेरी इस चिरयात्रा के ॥ जिससे मृत्यु के, जन्म-मरण के, बंधन क्षय हो जाकर, तुम्हारे विराट् बाहु में समाकर, मेरा धन जाना होगा विष्णुरूप विष्वात्मा ।"

और इस प्राणिजाल के साथ ही संबंध हो रहा था सन्मुख के दीही के शून्य आसन पर चित्रित पंचमहादेवों से पार के अस्मीश्वर देह के विराट् विष्णुरूप में विलीन हो जाने का, उनका 'विष्वात्मा' बन जाने का !

रविवार 22 मार्च की अर्ध्यांजलि सभा में कि जिसकी पूर्वचर्चा हो गई थी पर्यटन कर लिखा था 'पत्रिका ने मांगा हुआ छोड़ी विषयक लघु-लेख "आध्यात्मिक क्रान्ति की अग्रदूत विष्वात्मा विमलाजी", परंतु न तो उस पत्रवाली ने यह छापा (फुर्सत कहीं, मूल्य कहीं उन असंसारियों को ऐसी विराट् एक्की के उठ जाने का अपनी राजनीतियों की उधेड़बुनों और दोड़धूपों में ?), न उस सभा के संचालक मण्डल्य बंधु ने इस अत्मात्मा की निम्न अल्पसे वक्तव्य की प्रस्तुत करने का अपसर दिया (जब कि कुछ आतुरी शक्तों के अनर्गल अनावश्यक आलाप विस्तार की, एक 'स्वामीजी' की चली 'दीधकिया' के बीच में विलय से भी, स्नेहयुक्ति से भी रोकने संक्षेप करवाने का उन्हें साहस नहीं था) :-

"इस अर्ध्यांजलि अराधना के पूरव में मीरा की मेड़ता-भूमि से आत्ममस्ती की सुमारी मीरावत् ही प्रकाश उठा था मस्ति मलमोक्ष आनन्दपन का जब कि -

✓ "आशा औरन की क्या कीजै, ज्ञानसुधास पीजै !

मटक कर कर लगेन के बूकर आशाधारी,

आत्म-अनुभव रस के रसिया, उतरै न कबहु सुधारी ॥"

और यह कहकर-गाकर मुनि आनन्दयण ने खड़ा किया था सेंगों के आधिपत्य वाला यह उपास्य अडा के लिये । सेंगों के ऐसे 'पालक' संवन्न के धजाय इस अवधूत ने अपना लिया था इस अवधूत भूमि अर्ध्यांजलि का गुफावास ॥ प्रेमदिशनी मीरा ने मेड़ता का मलमल छोड़ा था पिष का धाला पीकर और आनन्दयण ने सुविधाभरा उपस्थ ॥ मीरा ने तो पिषान एक बार किया था, परंतु अनेकों के मलमलमल का पिषा ॥

वटवृक्ष की ^(है) छाया विलाई, पत्ती कलियाँ सारी मुरझाई;
विहंगों की पंखें सिकुड़ाई, जिस की सध से थी स्नेह-सगाई।

पितृ-मात ने, संत-तात ने जिसकी, अमृतजल से की थी सिंचाई;
बाबा ने अंतर-दृष्टि जगाकर, विमल से 'विमलानंद' बनवाई।
कृष्णजी ने अर्जुनयात्रा से जुड़ाकर, पकट करा दी जिसमें अखिलाई,
राजचन्द्र का 'अप्रमाद' अपनाकर, अंतर्मान की सृष्टि स्याद,
फलपल अप्रमत्त दशा प्रगटारी... ऐसे वटवृक्ष की...

दादा ने-ओमकारनाथ ने 'आत्मजा' बनाई, चाचा गुरुदयाल थे जिनके माई
स्वजन थे जिनके मकरंद-से साई, कच्ची की थी जो दादी-मों माई।
ऐसे वटवृक्ष की...

जिसने स्नेह की सृष्टि सजाई जो घट घट में रही समाई
जिसने अगम की महिमा 'गाई' 'मौन-अनुनाद'-अनुश्रुति सुनाई;
झीनी-झीनी-सी स्वर-धुन सुनाकर, जिसने 'मनरुद्र' की धुनि रमाई
झूने पतझड़ में, पतन-जड़ में-जग विरज में, कैसी 'अनाहत' धुम मचाई!
ऐसे वटवृक्ष की...

दाई अक्षर में प्रेम-पोथी पढ़वाकर, 'आत्मा' का अनुबंध बंधाकर,
जीमण से (उसका) नाता जुड़ाकर, ओंकार बिन्दु का लक्ष्य बनाकर
वीतराग मराणीर का दिल में ध्यान लगवाकर, केसाय-मुक्ति-युक्ति बतलाई,
मन के मौन की शक्ति दिखाकर, मौन-भजन की श्रुति उरसाई...।
ऐसे वटवृक्ष की...

नारी-चोले में अलख-जोड़ी थर कैसा, भलभलों की कनपटी पकड़ाई
कबीरवात अकखंड जोरखवात जंभीर अवशत आनंद्यन की 'रुमारी' भर लाई,
झोवात जागत कंधे न उतरै तारी, ऐसी, अगम-पियाला भंग पिलाई,
होली के दिन 'होली' खेली, अहंपद की होली जलाई;
शब्द में निहित, सुख सुख की ज्योत जगाई, ^{गुरुपदद्वयमान} घटघटविमल आत्मसिद्धि प्रगटारी
मर्त्य में अमर्त्य, ममर आत्मपद की, वारवार मर-मरि है जाई,
ऐसे वटवृक्ष की...

"नहीं 'जनम-दिन जशन' मनाना, नहीं मौत का मोतम मनाना,
स्मारक-तस्वीर ना हमरी बनवाना-पूजना, अंतर्लोक मौन ध्यान लावाना,
डिरे-विडिरे की दशा बरताकर हमें तो, जन्म-मरण के पार डे जाना,
बाहर-भीतर - जड़चेतन के नूतन अध्यात्म की कुंजी बालाई
(विज्ञान मार्ग ॥७) ऐसे वटवृक्ष की..."

⊗ आज

वटवृक्ष को 'सूना सूना' देखकर प्रभा-दीदी-से प्रतिष्ठायी पंछी रोये
 तो उसे 'भरा-पूरा' निहारकर वीणा-शिल्पा-अंजलि-तेजिंदर से वर्षा-सजवता में सोये
 कोई कहीं न चादर तान के सोये, मोन-गान में मुर भिजोये;
 (है) कैसी सब में लगन और लौ लगाई! वटवृक्ष की छाया विलाई,
 सत्री से जिसकी थी प्रेम सगाई...!

शिवमएल में शिवकुटी में 'तोमार आसन शून्य (शून्य, खाली) आनि'....!

बाहर से आसन है सूना (भीतर रामएल भरपूर, नही सूना)

पर 'शून्य मएल' में दीप जला है, अंतर्दीप जला है;

बाहर के सब नाद-गान स्वामिश्र रूप भरे हैं,

भीतर का अनएदु ढोल धजत चला है।

कैसी माई! यह 'लीला' स्याई...!

वटवृक्ष की छाया कहाँ विलाई?

शिवकुटी भाउन्ट जावु अणाम ५२ }
 19.3.09 }

— 'निशान्त' अनंतयात्री

(Repeated poems)

॥ ॐ ॥

६१६

शिवकुटी, पञ्चक २०३
20.3.2007

शिवकुटी समिती जई....

अणु अणु स्फटित हुआ था फिर भी,
कली कली मारी मुरझाई
भीतर राख पड़ उझाही 'जई'
बाहर से भले हंसते आई !
सरकरोशी किसको छे भागी ?
बिना हुई छे सख की तारी
अन्वेषण कर गई, चक्का डे गई
सख की प्यारी लसलाई भाई...!

शिवकुटी रमाफोबी जई

(थर) विरह व्यथा नहीं गई जाई
" अकथ कथा नहीं मुनाई जाई
सितार भी मरी शरमाई
'नाइ-अनुनाइ' ना, 'रुंज-अनुशुंज' ना !
मौन प्रतिध्वनि ना डेली स्वाई...!

शिवकुटी रमाफोबी जई

वरस पैतालीस धूनि रमाई,
अंगम ^{अवधूनी} निगम की अलस जगाई
स्वामोरा बंधुओं ! सुशियाँ मनको
दीदी ने ^{विष्णुरूप} अवधूनी छे पई...!
दुनिया के
बंकी

शिवकुटी रमाफोबी जई

वसन्ति

वसन्ति कर दी विष्वात्मा ने, कोली भर दी विमलाभिषे
वपन बुझ दी विष्वात्मा ने, दर्शन-दिशा दी विमलाभिषे ।

दीदी की अन्वेषण

दीदी आप भले विरह-पूछी-धरा से भाग गई
शिवकुटी अन्वेषण को लपका गई ॥
पूर मेरी आंखों से भाग कर दूर जाओगी
मैंने लख बिना रखा ली सख परफुसकों के का ।

'निशान' - अंतर्भाव
(कैलश ०८०-२६६७४४२)

धर
मर्यादा (वर्षा)
3.3.4.11. 19/11/17

॥ॐ नमः॥ ७/११

संतजन स्वजन विमल परिवार

परमपुरु पुरु राजचक्र तो पुरेडा लोक से करते रहे संचार ।
उनके प्रतीक सजीवन प्रतिधर्ति-से इन सैंतों का प्रत्यक्ष परम उपकार
(सब)

हमारा संतजन-स्वजन परिवार
जिससे हरा-भरा (बना) संसार !

पितृवत् पूणनिष्ठ भुवनरत्न सखानंद प्राज्ञ पंडित ^{मुसलमान} मुसलमानजी,
बाबा विनोबा ^{बाबा} बालकोबा ओर मस्ती ^{बाबा} मस्तीबाबा, मल्लिक ^{बाबा} मल्लिकजी,
संतवाल ओर ^{संतवाल} नानचंदजी, नाद संगीत गुरु बापूराय ^{नादानंद} नादानंदजी
कितकितनों ने इस पथरपत्त प्रताप का भर दिया पारावार !

(कर दिया मालामाल) बनाया हराभरा संसार

हमारा संतजन-स्वजन परिवार !

जन्मदात्री माँ अचरतबावत मुक्ति-दात्री डो वत्सल माता
रेपल्ली में चिन्मयी चिन्ममा, लम्ही में धनडवी जगन्माता
पड़ पड़ पर की कितनी रखवाली, जीयकर दिलायी सुख-धाता
पँघ बिहड़ में, थोर सँघर्ष में, आत्मसिद्धि संधान में कराती रही (जी) पार
कितकितना गिने उपकार

हमारा संतजन-स्वजन संसार !

संसार के इस विजन-वन में, स्वजन-जन थे थे शरणप्रदाता
इन सब के प्रतिनिधि बनकर, डीडी विमल रही मार्ग-विधाता
कभी मात-तातवा, कभी अग्रजगुण प्राप्तवा, कभी बिरिया द्विगता,
सत्री का स्नेह सभी का पारदुलार, तुराती रही, आत्मसिद्धि की ^{और} सौती भरमार,
द्विखलायी डिलातीत उशा' दरबार !
धन्य विष्णुआत्मा का विमल-परिवार !

— निश्चयन अर्जुनबाबा

विमलादीदी की सर्वोदय से समग्रता और सप्तभाषी तक की अनंत के साक्षर से जीवनयात्रा ~ ~ ~ ~ ~

अध्यात्म की अभिनय आयाम-प्रज्ञाता, समग्रता-अखिलाई (Wholeness) की अलस्य आराधिका, जीवनयोग की महासाधिका जीवनदृष्टा विदुषी दीदी विमलादीदी ठकार अंत में प्रायः ८८ वर्ष का जीवनवन पार करके विश्व के द्वार पर पहुँच गई हैं— ११वीं मार्च पूर्णिमा के प्रातः की अमृतवेला में, चैतन्य जयंती के दिन।

अनेक जन्मों की पूर्वसाधना लिये पधारी हुई, अपार पुरुषार्थ संपन्न की हुई, अनेक सैंतों-दृष्टाओं-महामानवों के स्नेह-सम्बन्ध को संप्राप्त, अनेक ग्रंथों का अयगाहन करते हुए भी स्वानुभव के जीवनग्रंथ का अनुसरण करनेवाली विमलादीदी आखिर महापिण्ड के 'मुहावने निस्पृह देश'—अग्रम देश के अग्रम मार्ग पर संचरण कर गई हैं— इस जीवन का एक आनंद सगर अधुनातम नूतन दर्शन कराकर, अनेकों के जीवन उज्ज्वल बनाकर, देह में बसते हुए भी विदेहीदशा धारण कर जीते हुए!

उनके साथ इस पंक्तिलेखक का, अन्य अनेक उपकारक सत्पुरुषों की पावन सम्बन्धि के उपरान्त, ५४ वर्ष का सुदीर्घ साखन्ध। भूदान आंदोलन १९५४ से लेकर आज २००९ तक का यह लम्बा परिचय नाता। इस नाते ने जीवन में बहुत बड़ी सर्जनमय श्रमिका निभायी है— 'तद्दूर तद्वन्तिके' पत्र निकट से और दूर से। योग्य वाक्छाया विमलाद्यु पुस्तिका में उसका अल्पांश आलेखित हुआ है। इस उपक्रम में दीदी के भूदान के शोषण पर बाबा विनोबाजी सह, अनन्त के साक्षर से श्री. जे. कृष्णमूर्ति सह एवं महाविदेह में होते हुए भी यहाँ/साक्षात् सास लेते संचरण करते हुए श्रीमद् राजचन्द्रजी सह इस अल्पात्मा का स्वल्प अंतर्विहार चला है। इन सब का यहाँ विमलादीदी के सन्दर्भ में थोड़ा ही संस्पर्श करेंगे।

सर्वोदय यात्रा

आठ वर्ष तक भूदान में उसका आध्यात्मिक आयाम सोजने जुड़े हुए दीदी ने, 'प्रबुद्ध जीवन' (गुजराती) के सम्पादक श्री परमानंद कश्यप के लेख एवं ३०-६-१९६३ के पत्र के उत्तर में, लिखा था कि—

"मैं १९५३ में भ्रमण आंदोलन में जुड़ी तब लोककल्याण की कोई एक प्रवृत्ति समझकर उसमें जुड़ी नहीं थी, परंतु उस आंदोलन की जो एक आध्यात्मिक पहलु था उस से मैं मुग्ध बनी रही और उस कारण से मैं आकर्षित हुई थी। मनुष्य में रही हुई 'innate goodness' विषयक - मूलभूत शुभ तत्त्व विषयक - श्रद्धा पर आधारित ऐसे इस क्रान्तिकारी आंदोलन ने मनुष्यजाति के प्रति प्रेम से भरे हुए मेरे चित्त को आकर्षित किया था। उस से सम्बन्धित प्रवृत्ति के पीछे मेरे भीतर रही हुई कर्तृत्वशक्ति को अभिव्यक्त करने की कोई सास-विशेष वृत्ति नहीं थी, परंतु मनुष्यजाति की ओर के प्रेम को अभिव्यक्त करने का आशय था..... (इस आंदोलन में) जीते-जागते भारत का यह प्रत्यक्ष परिचय मेरे लिये एक अलग ही तरह का अनुभव था.."

(सन्दर्भ: विमल संस्मरणों-गुज. प्रभाकरचंद्र: ९)

भ्रमण छोड़कर आषु नियासी बने हुए और चेतना के नये आयाम को उद्घाटित करने पर्यटनों की जोड़ सोजनेवाले विमलाबहन विषयक श्री. परमानंद कापड़िया के उपर्युक्त लेख और उनकी कवयित्री सुपुत्री श्रीमती गीताबहन परीराम ने किये हुए डीडी के "मौन के अनुनाद" के "नयो पल्लो" शीर्षक गुजराती काव्यानुवाद से अनेक शोधकों-साधकों को तब उनकी नई पहचान और (परिचय) जानकारी मिली थी। इन सभी स्पनामर्धन्य साधकों में से सधश्री त्रिकमल मल्लसुराम, बिंदुकाका, भोगीभाई आदि को तब आषु में डीडी के द्वारा श्री. जे. कृष्णामूर्ति का भी परिचय प्राप्त हुआ। कृष्णामूर्ति के एवं श्रीमद् राजचन्द्र के विषय में उन दिनों बातें विशेष होती थीं। श्री. कृष्णामूर्ति के प्रवचन पढ़ने के बाद उन पर चर्चा भी होती थी। श्री. त्रिकमभाई को श्रीमद् राजचन्द्र पर प्रचंड श्रद्धा थी। श्रीमद् राजचन्द्र के पद-विशेष कर के 'आत्मसिद्धि' वे अपनी बुलन्द आवाज़ से पढ़ा सुनाते थे।"

("विमल संस्मरणों" पृ. ९)

समग्रता की यात्रा: श्रीमद्जी और श्री. जे. कृष्णामूर्ति

समग्रता की इस आत्मखोज-यात्रा में डीडी को जितना परिचय श्री. कृष्णामूर्ति का प्रत्यक्ष रूप से हुआ था (देखें 'on an eternal voyage' आदि), उतना ही परिचय श्रीमद् राजचन्द्र जी को परोक्ष रूप से हुआ उनके अथाह साहित्य के अवगाहन-अनुशीलन और

"मैं १९५३ में भूदान आंदोलन में जुड़ी तब लोककल्याण की कोई एक प्रवृत्ति समझकर उसमें जुड़ी नहीं थी, परंतु उस आंदोलन की जो एक आध्यात्मिक पहलु था उस से मैं मुग्ध बनी रही और उस कारण से मैं आकर्षित हुई थी। मनुष्य में रही हुई 'innate goodness' विषयक - मूलभूत शुभ तत्त्व विषयक - श्रद्धा पर आधारित ऐसे इस क्रान्तिकारी आंदोलन ने मनुष्यजाति के प्रति प्रेम से भरे हुए मेरे चित्त को आकर्षित किया था। उस से सम्बन्धित प्रवृत्ति के पीछे मेरे भीतर रही हुई कर्तृत्वशक्ति को अभिव्यक्त करने की कोई सास-विशेष वृत्ति नहीं थी, परंतु मनुष्यजाति की ओर के प्रेम को अभिव्यक्त करने का आशय था..... (इस आंदोलन में) जीते-जागते भारत का यह प्रत्यक्ष परिचय मेरे लिये एक अलग ही तरह का अनुभव था.."

(सन्दर्भ: विमल संस्मरणों-गुज. प्रभाकरचंद: ९)

भूदान छोड़कर आषु नियासी बने हुए और चेतना के नये आयाम को उद्घाटित करने पर्यतों की जोड़ सोजनेवाले विमलाबहन विषयक श्री. परमानंद कापड़िया के उपर्युक्त लेख और उनकी कवयित्री सुपुत्री श्रीमती गीताबहन परीराम ने किये हुए डीडी के "मौन के अनुनाद" के "नयो पलटो" शीर्षक गुजराती काव्यानुवाद से अनेक शोधकों-साधकों को तब उनकी नई पहचान और (परिचय) जानकारी मिली थी। इन सभी स्पनामर्धन्य साधकों में से सधश्री त्रिकमल मल्लसुराम, बिंदुकाका, भोगीभाई आदि को तब आषु में डीडी के द्वारा श्री. जे. कृष्णामूर्ति का भी परिचय प्राप्त हुआ। कृष्णामूर्ति के एवं श्रीमद् राजचन्द्र के विषय में उन दिनों बातें विशेष होती थीं। श्री. कृष्णामूर्ति के प्रयचन पढ़ने के बाद उन पर चर्चा भी होती थी। श्री. त्रिकमभाई को श्रीमद् राजचन्द्र पर प्रचंड श्रद्धा थी। श्रीमद् राजचन्द्र के पद-विशेष कर के 'आत्मसिद्धि' वे अपनी बुलन्द आवाज़ से पढ़ा सुनाते थे।"

("विमल संस्मरणों" पृ. ९)

समग्रता की यात्रा: श्रीमद्जी और श्री. जे. कृष्णामूर्ति

समग्रता की इस आत्मखोज-यात्रा में डीडी को जितना परिचय श्री. कृष्णामूर्ति का प्रत्यक्ष रूप से हुआ था (देखें 'on an eternal voyage' आदि), उतना ही परिचय श्रीमद् राजचन्द्र जी को परोक्ष रूप से हुआ उनके अथाह साहित्य के अवगाहन-अनुशीलन और

"सप्तभाषी आत्मसिद्धि": डीडी का ही योगदान-प्रदान, इस अल्पस की नहीं!

इस पत्र के अर्से में ही डीडी ने इस पंक्तिलेखक को उसके 'सप्तभाषी आत्मसिद्धि' ग्रंथ-सम्पादन सृजन के अपरुद्ध कार्य में कैसीकैसी प्रेरणा और सहायता दी उसका तो लुखा इतिहास बन गया है। उस का किंचित् उल्लेख "Voyage with Vimalajee" पुस्तक में मार्च 1994 की मुलाकातों में और यत्र-तत्र अन्यत्र भी किया गया है। डीडी के 15.8.1996, 28.8.1996 आदि पत्रों के उपरान्त उन्होंने 'आत्मसिद्धि' की आंतर राष्ट्रीय शताब्दी के प्रसंग पर, 'सप्तभाषी आत्मसिद्धि' की प्रथम हस्तलिखित प्रत का शिकागो-अमरिका में विमोचन करते हुए, उसका असामान्य प्रत का शिकागो-अमरिका में विमोचन करते हुए, उसका असामान्य "पुरोपचन" इस सम्पादक को लिख भेजा। 28-8-1996 को ही लिखित डीडी का यह 'आत्मसिद्धि'-महिमा विषयक महामूल्यवान्, सहृदय, सर्वांग सुंदर पुरोपचन सप्तभाषी आत्मसिद्धि ग्रंथ में 'GLORY BE TO SRI RAJCHANDRA' मुद्रित हुआ है और यहाँ नीचे भी प्रिंटिआ गया है, यह शिकागो के उपरुक्त समारोह में सराहा गया। यह पुरोपचन स्वयं में ही एक दिशारूपक दृढ़ दस्तावेज बन चुका है। उसका एक एक शब्द चिंतनीय है। अदृष्ट जैसे श्रीमद्जी को यह दृष्ट और नितान्त सुस्पष्ट करता है, सजीवनमूर्ति के रूप में दर्शित करा देता है। श्रीमद्-साहित्य के अनेक प्रबुद्ध अध्येताओं और चिंतकों की पंक्ति में उनके इस 'गागर में सागर' समान लघुलेख-प्रस्तुतीकरण का नूतन और अनोखा स्थान है। यह उनकी श्रीमद्-श्रद्धा और समीपता व्यक्त करता है। "सप्तभाषी आत्मसिद्धि" के प्रकाशन के सम्बन्ध में तो डीडी इस श्रद्धा से भी सविशेष उपकारक धने हैं। श्रीमद्जी, सहजानंदधनजी, पं० सुरवलालजी, गुरुदयाल मल्लिकजी और माताजी धनदेवीजी समान सर्व प्रेरणादाता उपकारकों के मानों के साक्षात् प्रतिनिधि बनकर आये और रहे। बरसों का यह कसौटीपूर्ण असाध्य सम्पादन कार्य उन्होंने ही संपन्न करवाया कि जिसके लिये पक्ष्मि डी. कुमारपाल देसाई ('उज्जरात समाचार' दि. 28-9-2006) एवं डॉ. धनवंत शाह ('प्रबुद्ध जीवन' दि. 16-11-2006) जैसे सख्दयी मित्र इस लेखक-सम्पादक को श्रेय देते रहते हैं और जो एक 'निमित्तमात्र' से विशेष कुछ नहीं है। स्वयं डीडी भी इसके लिये इस अल्पस को अभिनंदित करती हैं (परिशिष्ट में उद्धृत उनके दो उपरुक्त पत्रादि द्वारा) तब उनकी यह 'अनुग्रह-लीला' शोभयुक्त बना देती है। इस से ही आगे बढ़कर, इस 'सप्तभाषी' के उपरान्त, समग्र श्रीमद्-साहित्य के आंगल

"सप्तभाषी आत्मसिद्धि": डीडी का ही योगदान-प्रदान, इस अल्पस की नहीं!

इस पत्र के अर्से में ही डीडी ने इस पंक्तिलेखक को उसके 'सप्तभाषी आत्मसिद्धि' ग्रंथ-सम्पादन सृजन के अपरुद्ध कार्य में कैसीकैसी प्रेरणा और सहायता दी उसका तो लुखा इतिहास बन गया है। उस का किंचित् उल्लेख "Voyage with Vimalajee" पुस्तक में मार्च 1994 की मुलाकातों में और यत्र-तत्र अन्यत्र भी किया गया है। डीडी के 15.8.1996, 28.8.1996 आदि पत्रों के उपरान्त उन्होंने 'आत्मसिद्धि' की आंतर राष्ट्रीय शताब्दी के प्रसंग पर, 'सप्तभाषी आत्मसिद्धि' की प्रथम हस्तलिखित प्रत का शिकागो-अमरिका में विमोचन करते हुए, उसका असामान्य प्रत का शिकागो-अमरिका में विमोचन करते हुए, उसका असामान्य "पुरोपचन" इस सम्पादक को लिख भेजा। 28-8-1996 को ही लिखित डीडी का यह 'आत्मसिद्धि'-महिमा विषयक महामूल्यवान्, सहृदय, सर्वांग सुंदर पुरोपचन सप्तभाषी आत्मसिद्धि ग्रंथ में 'GLORY BE TO SRI RAJCHANDRA' मुद्रित हुआ है और यहाँ नीचे भी लिखा गया है, यह शिकागो के उपभुक्ति समारोह में सराहा गया। यह पुरोपचन स्वयं में ही एक दिशारूपक दृढ़ दस्तावेज बन चुका है। उसका एक एक शब्द चिंतनीय है। अदृष्ट जैसे श्रीमद्जी को यह दृष्ट और नितान्त सुस्पष्ट करता है, सजीवनमूर्ति के रूप में दर्शित करा देता है। श्रीमद्-साहित्य के अनेक प्रबुद्ध अध्येताओं और चिंतकों की पंक्ति में उनके इस 'गागर में सागर' समान लघुलेख-प्रस्तुतीकरण का नूतन और अनोखा स्थान है। यह उनकी श्रीमद्-श्रद्धा और समीपता व्यक्त करता है। "सप्तभाषी आत्मसिद्धि" के प्रकाशन के सम्बन्ध में तो डीडी इस श्रद्धा से भी सविशेष उपकारक धने हैं। श्रीमद्जी, सहजानंदधनजी, पं० सुरवलालजी, गुरुदयाल मल्लिकजी और माताजी धनदेवीजी समान सर्व प्रेरणादाता उपकारकों के मानों के साक्षात् प्रतिनिधि बनकर आये और रहे। बरसों का यह कसौटीपूर्ण असाध्य सम्पादन कार्य उन्होंने ही संपन्न करवाया कि जिसके लिये पक्षशी डी. कुमारपाल देसाई ('उज्जरात समाचार' दि. 28-9-2006) एवं डॉ. धनवंत शाह ('प्रबुद्ध जीवन' दि. 16-11-2006) जैसे सख्तमित्र इस लेखक-सम्पादक को श्रेय देते रहते हैं और जो एक 'निमित्तमात्र' से विशेष कुछ नहीं है। स्वयं डीडी भी इसके लिये इस अल्पस को अभिनंदित करती हैं (परिशिष्ट में उद्धृत उनके दो उपभुक्ति पत्रादि द्वारा) तब उनकी यह 'अनुग्रह-लीला' शोभयुक्त बना देती है। इस से ही आगे बढ़कर, इस 'सप्तभाषी' के उपरान्त, समग्र श्रीमद्-साहित्य के आंगल

सुदृढ़ करवाते रहे, श्रीमद्-साहित्य को बहुजनहिताय प्रसारित करने
अनुरोध प्रयास, सहाय सदा करते-करवाते रहे। उनका अनेक बार
का यह अंतर्बोध-प्रबोध मानों अंतरिक्ष से प्रतिध्वनित हो रहा हो-

✓ "गुजरात के और भारत के युवान अथ विवेकानंद को बुला
जायें, श्रीमद् राजचन्द्र को सतत अपनायें। उनके साहित्य को याद करें।
उनके पद्यनों को पॉकेट बुक्स बनवाकर छुड़य में भी लिखें।
उनकी 'मोक्षमाला' जैसी कृतियों को पाठ्यपुस्तक बनवायें। उनकी
'पुष्पमालाओं' को जीवन में धारण करें।....." कार्यन्वित

झीड़ी के इस महत्वपूर्ण युगसंदेश को तत्काल करत हुए
एक ओर से उनके द्वारा प्रेरित आध्यात्मिक क्रान्ति शिविर पृथ्वी
में श्रीमद्जी की इस 'मोक्षमाला' कृति पर शिविर आयोजित किया
गया। हमपी कर्नाटक के श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम पर। दूसरी ओर से
'पंचभाषी पुष्पमाला' की पॉकेट बुक्स का मुद्रण-प्रकाशन करने का
सौभाग्य इस लेखक को प्राप्त हुआ, यह परम अनुग्रह है।

वर्तमान काल के लिये झीड़ी के इस युगसंदेश को अपनाए
की चुनौती आकर खड़ी है आक्रांत, आतंकित, अशांत विश्व समझ।
आत्मापक्ष आत्मापक्ष साधकों के लिये तो यह संदेश विशेष महत्व स्वता है।

✓ "आत्मविकास के लिये अध्ययन-चिंतन निस्संदेह आवश्यक,
परंतु जीवन की कृतार्थता केवल पढ़ने-सोचने में निहित नहीं है,
कृतार्थता है जीने में। इसलिये जीवन को आत्मदृष्टि, आत्मवृत्ति
और आत्मभाष में धीताना चाहिये। आत्मप्रवृत्ति में रममाण होने
के लिये, आत्मभाष में धरतने के लिये जो पातावरण अनिवार्य
प्रतीत हो वह बाहर-भीतर निर्मित करना चाहिये।

"जहाँ आत्मप्रवृत्ति को मुलाकर परप्रवृत्ति स्वीकार करना अनिवार्य
गिना जाता हो वहाँ साधक या तो आत्मप्रवृत्ति में और आत्मदृष्टि में
अडोल रहे या वहाँ से अपने आपको दृढ़तापूर्वक हटा ले। जीवन-
साधक के लिये दूसरा कोई उपाय नहीं है।

✓ "जबतक साधक डैनिक जीवन में किसी भी कीमत पर अनात्मा
और असत्य के साथ समझौता करे अथवा तो स्वयंनें न किया हुआ
समझौता स्वीकार करे, तबतक अधूरापन प्रतीत होगा ही होगा।

"जीवन में उच्च-उच्चतर ऐसे भेद नहीं रहते। आत्माविमुख
जीवन-आत्मविमुख जीवन, आत्मनिष्ठ जीवन-आत्मविरोधी जीवन,
आत्मरत जीवन और आत्मविसंगत जीवन ऐसे पर्याय प्रयुक्त

सुदृढ़ करवाते रहे, श्रीमद्-साहित्य को बहुजनहिताय प्रसारित करने
अनुरोध प्रयास, सहाय सदा करते-करवाते रहे। उनका अनेक बार
का यह अंतर-बोध-प्रबोध मानों अंतरिक्ष से प्रतिध्वनित हो रहा है-

✓ "गुजरात के और भारत के युवान अथ विवेकानंद को बुला
जायें, श्रीमद् राजचन्द्र को सतत अपनायें। उनके साहित्य को याद करें।
उनके पद्यनों को पॉकेट बुक्स बनवाकर छुड़य में भी लिखें।
उनकी 'मोक्षमाला' जैसी कृतियों को पाठ्यपुस्तक बनवायें। उनकी
'पुष्पमालाओं' को जीवन में धारण करें।....." कार्यन्वित

झीड़ी के इस महत्वपूर्ण युगसंदेश को तत्काल करत हुए
एक ओर से उनके द्वारा प्रेरित आध्यात्मिक क्रान्ति शिविर पृथ्वी
में श्रीमद्जी की इस 'मोक्षमाला' कृति पर शिविर आयोजित किया
गया। हमी कर्नाटक के श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम पर। दूसरी ओर से
'पंचभाषी पुष्पमाला' की पॉकेट बुक्स का मुद्रण-प्रकाशन करने का
सौभाग्य इस लेखक को प्राप्त हुआ, यह परम अनुग्रह है।

वर्तमान काल के लिये झीड़ी के इस युगसंदेश को अपनाए
की चुनौती आकर खड़ी है आक्रांत, आतंकित, अशांत विश्व समझ।
आत्मापक्ष आत्मापक्ष साधकों के लिये तो यह संदेश विशेष महत्व स्वता है-

✓ "आत्मविकास के लिये अध्ययन-चिंतन निरसंदेह आवश्यक,
परंतु जीवन की कृतार्थता केवल पढ़ने-सोचने में निहित नहीं है,
कृतार्थता है जीने में। इसलिये जीवन को आत्मदृष्टि, आत्मवृत्ति
और आत्मभाव में धीताना चाहिये। आत्मद्रव्य में रममाण होने
के लिये, आत्मभाव में धरतने के लिये जो पातावरण अनिवार्य
प्रतीत हो वह बाहर-भीतर निर्मित करना चाहिये।

"जहाँ आत्मद्रव्य को भुलाकर परद्रव्य स्वीकार करना अनिवार्य
गिना जाता हो वहाँ साधक या तो आत्मद्रव्य में और आत्मदृष्टि में
अडोल रहे या वहाँ से अपने आपको दृढ़तापूर्वक हटा ले। जीवन-
साधक के लिये दूसरा कोई उपाय नहीं है।

✓ "जबतक साधक डैनिक जीवन में किसी भी कीमत पर अनात्मा
और असत्य के साथ समझौता करे अथवा तो स्वयं ने किया हुआ
समझौता स्वीकार करे, तबतक अधूरापन प्रतीत होगा ही होगा।

"जीवन में उच्च-उच्चतर ऐसे भेद नहीं रहते। आत्माविमुख
जीवन-आत्मविमुख जीवन, आत्मनिष्ठ जीवन-आत्मविरोधी जीवन,
आत्मरत जीवन और आत्मविसंगत जीवन ऐसे पर्याय प्रयुक्त

विष्वमहिमा हो श्रीमद् राजचन्द्र की इस परावाणी की परमप्रभाका

" गुजरात के महान संत-कवि श्रीमद् राजचन्द्र द्वारा लिखित 'आत्मसिद्धि' भारत की सात भाषाओं में अनूदित हुई है और वह 'सप्तभाषी आत्मसिद्धि' शीर्षक से प्रकाशित हो रही है यह जानकर मैं अति आनंद अनुभव कर रही हूँ।

" आत्मसाक्षात्कार के उस विज्ञान का प्रकाशन बहुत पहले होना चाहिये था। एक आत्मानुभवसंपन्न गुरु और एक जिज्ञासु शिष्य के बीच के संपाद के स्वरूप की उस काव्यात्मक कृति में संगृहीत है - भारतीय अध्यात्म का सारसर्वस्वपूर्ण निष्कर्ष। जैनधर्म और हिंदुधर्म दोनों की सीमाओं के वह पार पहुँचता है। उसमें वैश्विक दर्शनसामग्री निहित है।

" कथ्यवस्तु का वैज्ञानिक सम्भालयुक्त निरूपण, शब्दचयन में गणितीय लाघव और शैली की रसप्रवाहिका सचमुच ही मुग्ध कर दें वैसा है।

" मुक्ति-मोक्ष यह कोई प्राप्त करने का ध्येय नहीं है। वह एक वास्तविकतापूर्ण संस्थिति है कि जो समझने की और आत्मसात् करने की है। व्यक्ति को चेतना के उस परसंगी-विहीन-पूर्वग्रहविहीन-ग्रंथीविहीन धरातल पर आकर उसकी अप्रमत्त, प्रमादरहित सजगता-समानता के साथ जीने का है। (*1)

" राजचन्द्र कहते हैं कि शूष्क, धार्मिक बाह्यक्रियाकण्ड अथवा कतिपय अनुष्ठानों के भावावेशपूर्ण पुनरुच्चारण - तोतारट - कोई आंतरिक परिवर्तन ला नहीं सकते। बंधन के मूलभूत कारण हैं राग और द्वेष। वस्तुस्थिति - सत्य - के अंतिम स्वरूप - विषयक अज्ञान, एक व्यक्ति के अस्तित्व - जीवितव्य - विषयक अज्ञान, व्यक्ति के अपने होनेपन - विषयक अज्ञान उत्पन्न करता है। राग-द्वेष का असंतुलन नींव में रख हुआ यह मूलभूत अज्ञान ही सारे ही दुःखों, वेदनाओं यातनाओं का मूल स्रोत है। (*2) अज्ञान का विलोपन ही समझदारी के प्रकाश के आने का उद्गमस्थान। समझदारी का, सजगता का प्रकाश अंधकार को बिखेर देता है। (*3)

(*1) अर्थात् 'मैं आत्मा हूँ' की इस आत्मभाषणा पूर्वक जीने का कि - याम। (117)
(*2) "शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन स्वयंज्योति मुखशाम, वीजु कहिये केरु ? कर विचार तो याम। (100)
(*3) "राग, द्वेष अज्ञान ए मुख्य कर्मनी ग्रंथ; धाम निवृत्ति जेह्यी ते जू मोक्षनो पथ। (114)
"कोटि वर्षों स्वर्ण धन जपत थता शमाय, तेम विनाय अनादिना शान थतां इर। याम। (114)

(Sachin)

“ राजचन्द्र के अनुसार सदेह-सजीवनमूर्ति / जिवित विदेही व्यक्ति-
विभूति के साथ की घनिष्ठ निकटता और ऐसे व्यक्ति की जीवन
जीने की जीवनशैली से बोध प्राप्त करने का सीसन। यह नितान्त
आवश्यक है। इस उद्देश्य को ग्रंथों से अथवा परंपराओं से एकत्र
किया हुआ शाब्दिक ज्ञान शायद ही पूर्ण करता है। (*4)

“ इस ग्रंथरत्न का गहन अध्ययन करने का मैं प्रत्येक
सौनिष्ठ साधक को सुदृढ़रूप से अनुरोध करती हूँ। श्री.
राजचन्द्र के शब्द सर्वोच्च-परम परालोक की प्रज्ञा के
आंदोलनों के द्वारा विद्युत-स्पर्शित होकर अनुप्राणीत बने
हुए हैं - रससिक्त हुए हैं। आत्मसिद्धि की प्रत्येक
गाथा में वे प्रत्यक्ष, सदेह सजीव हैं।”

— विमला ठकार: 28-8-1996

श्रीमद् राजचन्द्रजी के विषय में इस प्रकार समताभाषी
आत्मसिद्धि के इस पुरोवचन या 'अप्रमादयोज' अथवा 'पर्युषण
प्रसादी' इत्यादि प्रवचन-पुस्तकों में ही नहीं, स्थान स्थान के
वार्तालापों में, शिविर प्रवचनों में भी डीडी अपना अहोमस-
आदर अनुमोदना भाष-बहाते रहे और श्रीमद्-पत्रों का
अध्ययन करवाते रहे। उलहौसी, माधवपुर, महाबलेश्वर एवं अन्य
स्थान इस तथ्य के साक्षी हैं। एकध दृष्टांत ही देखें।

श्रीमद् के एक परम भक्तदुपति माधवपुर में डीडी से मिलने
के लिये आये और दोनों कहने लगे कि, "ऐसा आशीर्वाद
दीजिये कि जब डेह छोड़े तब समताभाव बना रहे।"
डीडी ने कहा कि, "मृत्यु के समय ही समताभाव बना रहे
ऐसा क्यों? ... समाधिस्थ जीवन का ही आशीर्वाद लीजिये।
श्रीमद् ने तो कहा ही है कि, 'तुम हो मोक्षस्वरूप।' यह भी
कहा है कि 'निजपद लहुं निजमांहि'। निजपद में स्थित
होने के बाद जन्म मृत्यु होते हैं क्या? xxx ममत्त्व
विलीन होता जाय, त्यों त्यों समत्त्व प्रकट होता जाता है।"
बाद में डीडी ने श्रीमद् राजचन्द्र की आत्मसिद्धि की गाथाएँ
गोई - "भार्यो देहध्यासेधी आत्मा देहसमान,
पण ते धने निन्न छे, जेम असि ने स्थान।"

Signature

(*4) मानादिक शत्रु महा निजछंदे न मराय,
जाता सद्गुरुशरणमाँ, अल्प प्रयासे जाय।

" यह भान, यह होश सतत बना रहे। सजगता रहे।
समस्त आत्मा का शील है, स्वभाव है। इस शील-स्वभाव का
आनंद पाने के लिये ही मानवदृष्ट का अपूर्व अपसर संप्राप्त
हुआ है।

" जय जिनेन्द्र जय जिनेन्द्र जाये जा।

" ज्योतिस्वरूप का दर्शन होने के पश्चात् सुख-दुःख का संवेदन
नहीं रहता। जन्म-मृत्यु का भय नहीं रहता।.....

✓ " गुजरात की प्रजा पर तो मेरे श्रीमद् का बड़ा ऋण है। विवेकानंद
के समान ही उनकी वाणी है। मोहमयी मुंबई नगरी में, पेढी
पर बैठकर उनकी अपरित साधना चली। वे 'व्यक्ति' नहीं थे,
वे तो एक Phenomenon (साक्षात् ज्ञानतत्त्व) थे। इंदर के महाराज ने
उनके गत जन्मों के विषय में पूछा तब उन्होंने कहा था कि, 'हम
महावीर के शिष्य थे।'....."

डीडी ने फिर कहा,

✓ " श्रीमद् यदि नहीं होते तो मोहनदास करमचंद में रहा हुआ महात्मा
गांधी नहीं होता।

" गुजरात की प्रजा में पाणिज्य के संस्कार इतने गाढ़ (गहन)
हैं कि मोक्षार्थी की बात, श्रीमद् के दर्शन की बात, कौन समझे ?
हों, लोण रोज देरासर (जिनमंदिर) जायें, दानधर्म करें उसमें ही
धर्म का आचरण करने का संतोष मान लें। 'पलभर का प्रमाद नहीं और
स्तीमात्र का असत्य नहीं'—यह जीने के लिये तो सुविधा-सुरक्षा
की दांव पर लगाना पड़े! उसके लिये तो कीमत चुकानी पड़े!!

तेसे (यह) जीने का साहस है? तैयारी है?

" श्रीमद् के सोभाभाई पर लिखे हुए पत्र तो अमूल्य सजाना
है। उस में साधक के लिये क, ख, ग से लेकर निजपद तक
की यात्रा का सफ़र लोकभोज्य भाषा में प्रस्तुत किया गया है।"

("विमल सत्त्व": प्रभाषेन मरचंट : पृ. १६३-६४ गुजराती)

इस प्रकार डीडी ने श्रीमद्जी की सर्वोपकारक परा-वाणी की, उसकी
परमप्रभा की, उनके महाप्रदान की महिमा सर्वत्र, जहाँ विचरण किया
वहाँ, विश्वभर में गई और प्रसारित की।

श्रीमद् की आत्मसात् करती चली डीडी की जीवनयात्रा का यह
कोई अल्प प्रदान है? प्रतिफलन है?

पूर्व उल्लिखित (पृ. २१) 'सप्तभाषी' ग्रंथ विषयक डीडी की 'अनुग्रह-लीत्र' के दो पत्र, जिनमें वे उनके ही इस कृपा-कार्य-प्रतिकूलन के लिये इस 'निमित्तमात्र' अल्पसं संम्पादक का अभिनन्दन कर रही हैं।

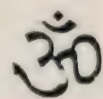
कैसी है उनकी यह दूसरों को श्रेय और यश दिलवाने की कला और करामत ?

(७) सप्तभाषी आत्मसिद्धि

xvii

SAPTABHASHI ATMASIDDI

• 'SHIVKUL' DALHOUSIE, HIMACHAL PRADESH 176 304. PHONE : 2262
• 'SHIVKUTI' MOUNT ABU, RAJASTHAN 307 501. PHONE : 3154



VIMALA THAKAR

GLORY BE TO SRI RAJCHANDRA

I am very happy to learn that Atma Siddhi written by Sri Rajchandra - the great poet-saint of Gujarat is translated into seven languages of India; that it is being published under the caption "Sapta-Bhashi Atmasiddhi".

Publication of that Science of Self-Realisation ought to have been done long ago. In that poetic treatise having a format of a dialogue between an emancipated master and an enquiring student, is contained the essence of Indian Spirituality. It transcends the frontiers of both Jainism and Hinduism. It has a global content.

The scientific handling of the theme, the mathematical precision in the choice of words and the lucidity of style are simply enchanting.

Liberation is not a goal to be attained. It is a fact which has to be perceived and understood. Getting grounded in the unconditionally free nature of consciousness, one has to live with its awareness.

Dry theological dogmas or sentimental repetition of certain rituals do not bring about transformation says Rajchandra. Raga and Dwesha - infatuation and hatred - are the root causes of bondage. Ignorance about the ultimate nature of reality, about the essence of one's Being causes the imbalance of Raga-Dwesha. That basic ignorance is the source of all suffering. Eradication of ignorance is the emergence of Understanding. The Light of Understanding dispels darkness.

According to Rajchandra, close proximity to a living liberated person and learning from such a person's way of living is indispensable! Verbal knowledge gathered from books or traditions hardly serve that purpose.

I strongly recommend a serious study of this jewel of a book to every genuine sadhaka. The words of Sri Rajchandra are charged with the vibrations of Supreme Intelligence. He is alive in every verse of Atma Siddhi.

Vimala Thakar
28-8-1996

सर्व अंतर्गामी साधकों को श्रीमद्-सन्मुख करते डीडी

उपर्युक्त उपक्रम में 'आत्मसिद्धि' में संहितित अंतर्दर्शिन — अंतर्गामी को डीडी सदा सर्वत्र बहाये चली जाती है। अपने प्रबल प्रोजल प्रबोध से साधकों के शिबिरों में हर जगह वे — श्रीमद्जी से बिल्कुल अनजान प्रारम्भिक श्रोताओं को भी — समझाये चलती हैं — अद्भुत सहजता पूर्वक। इस विषय में कुछ अधिक संस्पर्श। 1988 के महाकव्येश्वर के ध्यानशिबिर में 'यात्रा अपने भीतर' शीर्षक प्रश्नोत्तर में वे इस बात को इस प्रकार स्पष्ट करती हैं: —

"xxxxxx यह यात्रा अपने से कहीं दूर जाने की नहीं है। दूर कहीं जाना हो तो कौन-सा मार्ग लें — यह विकट प्रश्न हो सकता है। पर यह तो स्वयं तक की ही यात्रा है। जो स्वरूप पता नहीं है उस स्वरूप का ही समझ भर लेना है।

" जो स्वरूप समझे बिना पाया दुःख अनन्त।

समझाया वह, उन्हें नम्र श्री सद्गुरु भगवन्त।" — (आत्मसिद्धि)

✓ श्रीमद् राजचन्द्र नाम के एक महात्मा सन्त युष्क गुजरात में अभी अभी हो गये, जिन्हें गाँधीजी ने लगभग गुरु की भाँति माना था, अपनी अध्यात्म-जिज्ञासा का समाधान उनसे पत्रसम्पर्क द्वारा पाया था। उन राजचन्द्रभाई ने 'आत्मसिद्धिशस्त्र' नाम का एक छोटा-सा (कुल १४२ पृष्ठों का) ग्रन्थ सरल गुजराती में लिखा। उसका प्रारम्भ ही उक्त पद्य से किया। — 'जो स्वरूप मैंने समझा नहीं था, जिसके अज्ञान के कारण जन्म-जन्मान्तरों से अनन्त दुःख भोगते-भोगते यह जीव आया है, वह स्वरूप जिन्होंने मुझे समझा दिया — उन गुरुओं को मैं प्रणाम करता हूँ।'।

"अर्थात् अन्ततः यात्रा किसलिये है? स्वरूप को समझने के लिये अपने से अपने सत्य तक ही यह यात्रा है। और इसी स्वरूप में स्वरूप भरा हुआ है। कोई विस्वरूप से प्रारम्भ करके आत्मस्वरूप तक पहुँचते हैं। यानी भक्तिमार्ग पकड़ते हैं, और कोई स्वरूप से ही प्रारम्भ करके स्वरूप में ही समाते हैं। — इसी में विस्वरूप को समझ जाते हैं। इसलिये साधना में अपने से दूर कहीं जाने को दिखाई नहीं है। और पारमार्थिक दृष्टि से सच कहें तो — अनुपाय एव उपाय।" किसी भी

(Footnote)

(*) प्रत्यक्ष सम्पर्क के द्वारा भी किसी में।

(*) 2 'जो एग जाणइ से सब जाणइ' = जो एक को, आत्मा को जानता है वह सबको सार जगत को जानता है। — निग्रन्थ प्रपचन।

क्रियाकाण्ड के धाराण या शब्दों के पसार से यह स्वरूप हाथ नहीं आता। इस समझने के लिये जितना-सा पुरुषार्थ करना पड़े उतना ही अभिप्रेत है। यही प्रथम और अन्तिम चरण है। (That is the first & the last step.)"

(अश्वत्थ की ओर" पृ. 49)

श्रीमद् जैसा जीवनव्यवहार

और ऐसा स्वरूप को सर्वथा समझनेवाला सत्त्व विषय-व्यवहार कैसा करेगा? व्यवहार में किस प्रकार चलेगा?... वह 'स्वात्म में समदृष्टि' देगा। सर्व आत्माओं में अपनी आत्मा देखेगा। सामनेवाले के दुःख, चिन्ता स्वयं हरण कर लेगा। अर्थात् स्वयं को व्यवहार में उतारते हुए स्त्रीभर के असत्य का आचरण नहीं करने का आग्रह करनेवाले दीदी यहाँ पर श्रीमद् राजचन्द्र जी का ऐसा व्यवहार भी ध्यानपूर्वक निहारते हैं और उसकी भूरि भूरि प्रशंसा-अनुमोदना करते हैं। श्रीमद्-जीवन के प्रसिद्ध प्रसंग को उद्धृत करते हुए अंतर्भाव साधकों से वे कहते हैं:-

"xxx फिर व्यवहार में आप करेंगे-जैसा श्रीमद् राजचन्द्र ने कभी किया था। सौदा किया और जिसके साथ सौदा हुआ था, जो देनेवाला था diamonds (हीरे) ला करके, -उसने देसा, उसके डाम बढ़ गये। price बढ़ गयी। यह चिन्ता में था कि contract तो श्रीमद् के साथ पहले कर चुका। न दूँ तो सौदे में अप्रामाणिक रहूँगा। देता हूँ तो इतने लाखों का मेरा नुकसान होता है।

(श्रीमद्) ॥ उसकी खबर मिलते ही सुबह उठकर उसके घर जाते हैं, कागज जेब में रखकर। कहते हैं, 'चिन्ता में हो, मेरे भाई? तुम्हारी चिन्ता का कारण मैं लाया हूँ। यह सौदे का कागज है।' फाड़ दिया। (श्रीमद्) राजचन्द्र दूध पी सकता है, लहू नहीं पी सकता।' अब क्या कहेंगे आप? कैसा मूर्ख था? उसका क्या दोष था? price बढ़ गई, तो श्रीमद् राजचन्द्र का क्या नुकसान? उसका तो कोई गुनाह नहीं था। इतने पैसे का नुकसान किया! वह व्यवहारी आदमी नहीं था।

॥ इसलिये मैंने कहा कि व्यावहारिक मान्यताएं और सत्य का स्पर्श, आज की सुरक्षा की भावना, इसके लिये होनेवाला प्रयास, पुरुषार्थ, इनकी representative गुणात्मक भिन्नता रहेगी।

"संसार में रहते हुए, सत्य के रास्ते पर चलना होता है। जिसको संसार सफलता-विफलता कहता है, सम्मान-अपमान कहता है,

क्रियाकाण्ड के धाराण या शब्दों के पसार से यह स्वरूप हाथ नहीं आता। इस समझने के लिये जितना-सा पुरुषार्थ करना पड़े उतना ही अभिप्रेत है। यही प्रथम और अन्तिम चरण है। (That is the first & the last step.)"

(अश्वत्थ की ओर" पृ. 49)

श्रीमद् जैसा जीवनव्यवहार

और ऐसा स्वरूप को सर्वथा समझनेवाला सत्त्व विषय-व्यवहार कैसा करेगा? व्यवहार में किस प्रकार चलेगा?... वह 'स्वात्म में समदृष्टि' देगा। सर्व आत्माओं में अपनी आत्मा देखेगा। सामनेवाले के दुःख, चिन्ता स्वयं हरण कर लेगा। अर्थात् स्वयं को व्यवहार में उतारते हुए स्त्रीभर के असत्य का आचरण नहीं करने का आग्रह करनेवाले दीदी यहाँ पर श्रीमद् राजचन्द्र जी का ऐसा व्यवहार भी ध्यानपूर्वक निहारते हैं और उसकी भूरि भूरि प्रशंसा-अनुमोदना करते हैं। श्रीमद्-जीवन के प्रसिद्ध प्रसंग को उद्धृत करते हुए अंतर्भाव साधकों से वे कहते हैं:-

"xxx फिर व्यवहार में आप करेंगे-जैसा श्रीमद् राजचन्द्र ने कभी किया था। सौदा किया और जिसके साथ सौदा हुआ था, जो डेनेवाला था diamonds (हीरे) ला करके, -उसने देखा, उसके डाम बढ़ गये। price बढ़ गयी। वह चिन्ता में था कि contract तो श्रीमद् के साथ पहले कर चुका। न दूँ तो सौदे में अप्रामाणिक रहूँगा। देता हूँ तो इतने लाखों का मेरा नुकसान होता है।

(श्रीमद्) "उसकी खबर मिलते ही सुबह उठकर उसके घर जाते हैं, कागज जेब में रखकर। कहते हैं, 'चिन्ता में हो, मेरे भाई? तुम्हारी चिन्ता का कारण मैं लाया हूँ। वह सौदे का कागज है।' फाड़ दिया। (श्रीमद्) 'राजचन्द्र दूध पी सकता है, लहू नहीं पी सकता।' अब क्या कहेंगे आप? कैसा मूर्ख था? उसका क्या दोष था? price बढ़ गई, तो श्रीमद् राजचन्द्र का क्या नुकसान? उसका तो कोई गुनाह नहीं था। इतने पैसे का नुकसान किया! वह व्यवहारी आदमी नहीं था।

"इसलिये मैंने कहा कि व्यावहारिक मान्यताएं और सत्य का स्पर्श, आज की सुरक्षा की भावना, इसके लिये होनेवाला प्रयास, पुरुषार्थ, इनकी comparative गुणात्मक भिन्नता रहेगी।

"संसार में रहते हुए, सत्य के रास्ते पर चलना होता है। जिसको संसार सफलता-विफलता कहता है, सम्मान-अपमान कहता है,

श्री. सोमनाथभाई, श्री. अंबालालभाई, श्री. जुहाभाई, श्री. पोपरभाई
इत्यादि अनेक नाम-अनाम, स्वनाम धन्य, महामनाओं ने श्रीमद्महि-
-मत्ता प्रसारित करने का जो पुण्यकार्य किया, वैसा ही महत्कार्य
श्रीमद्जी के जीवन्मोक्षकालमें ^{समर्पित} डा. अण्णवल्लभदास पंडित जी, सुखलाक्ष्मी-
बेचरदास जी - डा. ए. एन. उपाध्याय जी के लेखन-आलस्यना और सर्वसि
पसंतभाई खोस्याणी, सुधीरभाई शाह, जे. आत्मानंदजी)
आदिके प्रभावक-प्रयत्नों आदि से भी, अपने प्रयोगपूर्ण समर्पित विश्व-
-जीवन के कारण, शायद बढ़कर किया है इन दो विद्वतियों ने -
✓ सारजानंदधनजी (भद्रमुनि) और विमलाक्षी ने। अपने स्वाध्याय से
यह लेखक निःशंकुष से यह विनम्र विधान करता है।

दीदी विमलाक्षी का तो श्रीमद्जी के सर्व तत्त्व-प्रभावकों
के प्रति, केसा और कितना आत्मीयता का, अनुमोदन का भाव सतत
व्यक्त उसका अभी अभी का ही उद्धारण है गत पर्युषणपूर्वमें
✓ अहमदाबाद में मुझ श्रीमद्-तत्त्व-प्रभावक श्री. पसंतभाई खोस्याणी द्वारा
दिये गये 'गांधीजी-श्रीमद्जी पत्रव्यवहार' प्रयत्नों की आधु बड़े दृष्टि
सुनकर दीदी के द्वारा की गई उनकी अनुमोदन और अभिनंदना। जो कि
इसी प्रकार कुछ समय पर इस लेखक के भी 'बाहुबली दर्शन' 'जयभारती
फिल्म' में बाहुबलीजी के आह्वानक सुध को श्रीमद्जी-गांधीजी तक
ले आकर दर्शाने की चेष्टा को दूरदर्शन पर प्रेषक तुरन्त व्यंग्योद
इंककोण कर संप्रेषित की हुई अभिनंदना।

आत्मशरीरी की आत्मदृष्टि श्रीमद्जी की परबल करनेवाली अंतर्दृष्टि
को प्रणाम और प्रणाम उनकी उस सूक्ष्म-सुदूर सांकेतिक अनुमोदन -
-दृष्टि को भी, जो कि हम जैसे लघुजनों को भी छोड़ती नहीं। प्रणाम
अनेकशः श्रीमद्जी सह दीदी और सारजानंदधनजी जैसे श्रीमद्-सर्व-
सुदृढ़ करनेवाले उपकारकों के प्रति। उन्हीं के श्रीमद्-समर्पण यंत्रणा
के शिखरों में -

"अनन्य आत्मशरणपदा सद्गुरु राजविदेह
परमव्यक्त्यय चरण में, धुं आत्मबलि एह" (सारजानंद सुध)

॥ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

(सारजानंदधनजी
गुरुमुखी
काकर)

विमल-उक्ति (सुषी विमला डीडी के काव्य)

"क्या हूँ मैं ? कौन हूँ मैं ? न पूछो कोई मुझसे,
 मृण्मय साज पर बजाया किमय का इक गान हूँ मैं ॥"
 मत पूछो मुझे कि, क्या हूँ मैं और कौन हूँ मैं ?
 विष्णुचेतना की लीला का एक सख्त स्पन्द हूँ मैं,
 विधाता की एक कविता हूँ, छंदों का निज छंद हूँ।
 मिलो, मुझे सख मिलो, सुनो मेरे श्वासा में संकृत गीत सुनो,
 आकाश का अलंकरण हूँ, रूपातीत का स्वरूप हूँ,
 देखो, मुझे सब देखो, इषण हूँ मुझे मैं निज रूप देखो,
 विरह में प्रच्छन्न मिलन की खुमारी आप को कब आवेगी ?
 जुड़ाई की भ्रमजाल कब रू जावेगी ?
 (विरहमा प्रच्छन्न मिलनी पुमारी नम्रो तयारे गमने ?
 लुधनिो भ्रम तयारे भरने ?)

— प्रभाषिन प्रति पत्र में (२२-५-१९६५)
 'विमल सँस्मरणों' (गुजरात : १९९५) पृ. ७१

विमल-कविता : विमल वाणी
आखिर क्यों ?

क्यों ? आखिर क्यों ? मेरा क्या अपराध है ?

जलर उगलने वाले उगलते हैं — स्पर्धा का, क्रोध का, द्वेष का;
और आँतों मेरी कुनी जाती हैं।

अपरा लहाने वाले लगा जाते हैं — नफ़रत की, हिंसा की खबरिता की;
और कलेजा मेरा झुलसता है।

जपान भरते हैं, मरि जाते हैं — वियतनाम, कश्मीर हिन्दुस्तान में;
और कोख मेरी सूनी पड़ती है।

आँसू बहते हैं — बच्चों के, बूढ़ों के, अपाहिजों के;
और सून मेरी धमनियाँ में सरपता है।

क्यों ? आखिर क्यों ?

भूलता है मानव सत्य, प्रेम, करुणा;
और ल्हा से झुकता मेरा भाषा है।

विमल-कवित्त : विमल वाणी

कोई समझा तो दे !

जिन्दगी किस बला का नाम है ?
 कोई सयाना ज़रा हमें समझा तो दे !
 कब्रम रखा है जब से दुनिया के बाजार में —
 शौदा मौत का देखा है हम ने हर ओख में ।
 मौत से बचने के रास्ते हर कोई ढूँढ़ता —
 मन्दिर-मस्जिद में हर कोई है भागता —
 क्या बचते रहने की कोशिश की जीना कहे ?
 कोई सयाना ज़रा हमें समझा तो दे !
 हमेशा इन्सान को इन्सान से डरते दिखा,
 हमेशा हर इश्क को कशिश से काँपते दिखा,
 झूठ की तएज़ीब के नक़्शों से झाँकते दिखा,
 यमण्ड को इल्म-ह्नर के झरोखों से झाँकते दिखा ।
 क्या छिपने-लुक्ने - झाँकने की कोशिश की जीना कहे ?
 कोई सयाना ज़रा हमें समझा तो दे !

अलबेली धारा

जिन्दगी है एक अलबेली धारती धारा,
 मंज़िल के कायलों का यहाँ गुज़रा नहीं;
 इल्म-ह्नर वाले तो ज़रा भी ज़बारा नहीं ।
 मौजे-धारा का जो आशिक़ हो,
 जिन्दगी बस उस की कायल है ।
 मौजे-धारा-कनार का जो धायल हो,
 जिन्दगी बस उसकी कायल है ।
 मुक़ाम ढूँढ़नेवालों की मौत यहाँ,
 फ़िल्मुफी के धन्दा की कक़ यहाँ,
 नवगिरी-बीमार का नज़ारा है यहाँ,
 आशिक़-मिज़ाज़ों का बस गुज़रा है यहाँ ॥

विमल-कवि : विमल वाणी

सर्व पावन मंगल घटना

देह में रहते हुए
विष्यभर में व्याप्त होने की प्रतीति
कितनी अद्भुत है !

'मम'-भाव से सर्वथा अस्पृष्ट
'अहमस्मि' प्रत्यय कैसा विलक्षण है !

'अस्मत्' प्रत्यय तो है
'युष्मत्' प्रत्यय उठता ही नहीं !
सर्वतामयी चेतना ने देह का कब्जा लिया है ?
या अह-चेतना 'सर्व' में व्याप्त हुई है ?
जो भी है - पावन मंगल घटना है !
जागृति-स्वप्न-सुषुप्ति का अनुबन्ध
वैश्विक जीवन से ग्रंथित गया है !
निरपेक्ष प्रेषित्व सार्वभौम है,

न द्रष्टा, न द्रश्य
द्रष्टि की निष्कम्प ज्योति !
उसका प्रज्वलित रहना जिवित होने का आशय !

अवधान उसका आलोक,
आलस्य उसका सौम्य,
आनंद उसकी परिणति !

आलोक, आलस्य, आनंद
व्यक्तित्व के मृत्यु ने घट की
अमृत कलश बना न दिया है !

विमल-कवित्त : विमल वाणी

२३)
(नसली वधार)

घट से जीवनरस छलके...!
[परा-पश्यन्ति-मध्यम-वैखरी वाणी का अर्थ है जीवन वधार में]
जीवन की इस मधु संध्या में
घट से जीवनरस छलके ।
चित्त में संचित जीवनसौरभ
सुरभित काया की कर डे
उ नयनों की मधुशाला में
पलकों की पाली छलके... जीव ॥ ०

मौन नित्य में 'परा' भात के
मुग्ध नाद विन्दु छलके
'पश्यन्ति' में ए अनिसिंचित
मुखरित 'मध्यम' में गुंज... जीव ॥ ०

स्फुट 'वैखरी' में अमृतधारा
रसमय सजीपक प्रकटे
इरोन्द्रियों से छलके हरिरस
संध्या हरिमय डीप्ति धरे... जीव ॥ ०

जीवन की इस मधु संध्या में
घट से जीवनरस छलके
विमल विलास रसव्यर हरि का
जन्म मृत्यु मलारास बने... जीव ॥ ०

— मौन के अनुनाद